वर्ष–1, अंक–11
इंटरनेट संस्करण : 62

गर्भनाल पत्रिका

ISSN 2249–5967
जनवरी 2012 ● ₹ 20

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

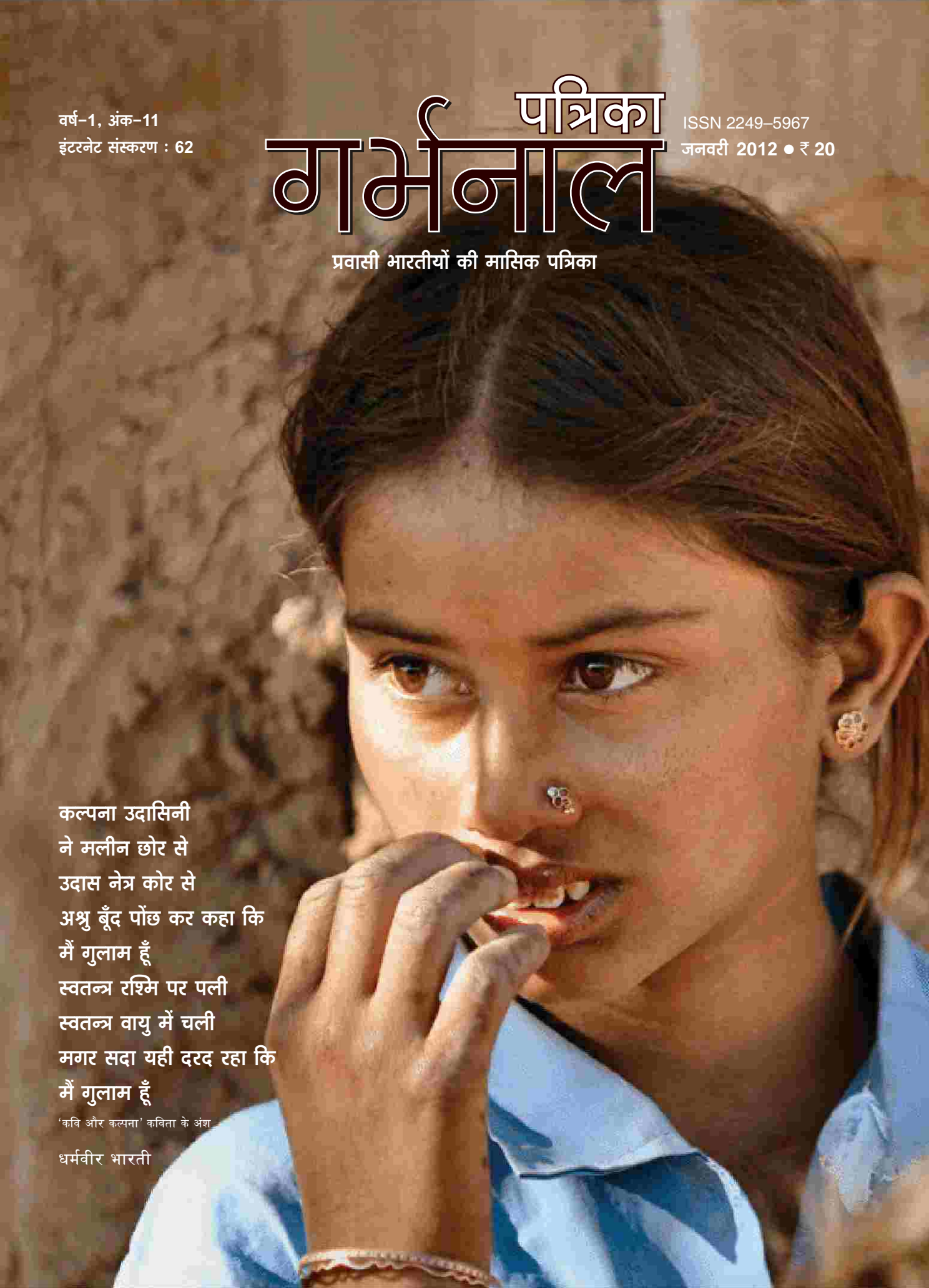

कल्पना उदासिनी
ने मलीन छोर से
उदास नेत्र कोर से
अश्रु बूँद पोंछ कर कहा कि
मैं गुलाम हूँ
स्वतन्त्र रश्मि पर पली
स्वतन्त्र वायु में चली
मगर सदा यही दरद रहा कि
मैं गुलाम हूँ

'कवि और कल्पना' कविता के अंश

धर्मवीर भारती

अपनी बात

दिल्ली के रामलीला मैदान की घटना जिसे 'कार्निवल' कहा जा सकता है, को गुजरे अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं. एक मुद्दे के इर्द-गिर्द इतनी बड़ी हलचल हाल फिलहाल में नहीं देखी गई है. रामदेव-हजारे के भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन को अलग-अलग लोगों के जरिए अलग-अलग अर्थों में समझा गया है. बहुतेरे लोगों का मानना है कि इसकी जरूरत थी. सरकार को अच्छा सबक मिला है. कुछ लोगों ने माना कि सिविल सोसायटी ने अपना काम ठीक-ठाक किया है. सम्पूर्ण घटना ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है. ऐसे लोग भी हैं जो सवाल करते हैं यह हलचल, आन्दोलन का यह उत्सव, यह आडम्बर, यह सब कितना सतही है और कितना आन्तरिक? इस तरह अचलावस्था कायम कर अपनी माँग मँगवा लेने में सही मायनों में जनता के हित का कितना-सा अंश है? यह आखिरी समूह उन आलोचकों का समूह है जो गणतंत्र का वास्तविक अर्थ समझने में असमर्थ हैं.

सब देखने-सुनने के बाद निरपेक्ष रहते हुए भी कहना ही पड़ेगा—कि यह सारा माजरा एक प्रच्छन्न infatuation है. अंगरेजी के इस शब्द का हिन्दी प्रतिरूप मोह होना चाहिए. जन-समावेश में सम्मिलित होकर इंकलाब कर आने की धारणा दुधारी तलवार होती है. यह स्वेच्छाचारी शासक को पदच्युत कर सकती है (हाल में लीबिया और मिस्र की तरह), तो जनता में भयानक भ्रान्ति और उन्माद भी फैला सकती है. गणतंत्र की अवधारणा का विस्तार व्यापक होते हुए भी स्थान एवं परिस्थिति के अनुसार कभी भी भयानक भंगुर और भुरभुरा हो सकता है. सरकार के विरोधी इसको सुयोग समझकर जनता को भड़काने की भूमिका में लग ही सकते हैं. अगर गणतंत्र की संज्ञा या माँग प्रत्यक्ष रूप से जनता के हाथ में राजनैतिक क्षमता हो तो उस देश को ताश का महल होने में देर नहीं लगेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं.

अण्णा हजारे और उनके साथ आन्दोलन करने वालों की नजर में यह अन्तर्विरोध नहीं दिखलाई पड़ा कि अपने इस कदम के द्वारा उन्होंने भारतीय गणतंत्र को ही आहत किया है. सवाल किया जा सकता है कैसा आघात? जवाब होगा - गणतांत्रिक भावना या स्पिरिट को.

भ्रष्टाचार निर्निवाद रूप से घृण्य है और इसके खिलाफ आन्दोलन खड़ा करने के लिए पहली जरूरत है कि उस आन्दोलन का एक रूप तय किया जाए. अण्णा के काम ने जनप्रियता हासिल की है. पर सवाल उठता है कि क्या यह जनप्रियता मात्र एक छवि नहीं है? मिडिल क्लास का आवेश, एन.जी.ओ. की सहायता और स्वार्थ, गेरुआ राजनीति की मदद के साथ मीडिया की अतिशयोक्ति का योग. क्या इनके मिश्रण के ही बूते पर द्वितीय गाँधी ने भारत का द्वितीय स्वाधीनता संग्राम छेड़ा?

शायद लोकपाल बैठे और लोकपाल बैठने के फलस्वरूप भ्रष्टाचार भी कुछ समय के लिए रुके. लेकिन यह भ्रष्टाचार तो एक खास तबके का होगा, राजनीतिज्ञों और सरकारी अफसरों का. कॉरपोरेट एवं गैरसरकारी क्षेत्रों का भ्रष्टाचार कौन बन्द करेगा? वहाँ लोकपाल की भूमिका क्या होगी? अगर लोकपाल खुद ही भ्रष्ट हो तो क्या किया जाएगा? इस पहलू को तो यह टीम पूरी तरह नजरअन्दाज कर गई है.

जो भी हो, सवाल उठता है कि इस टीम के उभड़ने की राह किसने हमवार की? निश्चित रूप से विधायिका के सदस्यों ने. इस सूत्र को पकड़ते हुए बाद वाले प्रसंग पर आया जाए. Charity begins at home उक्ति से संकेत लेते हुए आत्म-निरीक्षण और आत्म विश्लेषण के महत्व को स्वीकार करें. जिस व्यक्ति को जो काम सौंपा गया हो, उसे वह ठीक-ठाक करे. ऐसा नहीं करने पर जो क्षुद्रता, रिक्तता और शून्य उभड़ते हैं, वे विपदजनक हो सकते हैं. अण्णा हजारे की टीम ने जो तमाशा दिखलाया और रोज-रोज धमकियाँ देते जा रहे हैं, उसकी आँच को तो अनुभव किया ही जा सकता है.

इन घटनाओं के आलोक में विधायिकाओं के सदस्य और वृहत्तर अर्थ में राजनीतिज्ञ स्वयं सचेतन और संयमी होकर अपनी कार्यप्रणाली में बदलाव लाएँ. बात-बात में सदन की कार्यवाही को ठप्प कर उन्होंने अपनी संसदीय गरिमा की हर तरह से क्षति की है. किसी भी मुद्दे को उपलक्ष्य बनाकर सदन से वाकआउट करना या संसद को अचल करने का तरीका बंद करने का समय आ गया है. अगर वे अपना काम ठीक-ठाक करें तो जनविक्षोभ और इसको इस्तेमाल कर जनता को उकसाया नहीं जा सकेगा. अभी जैसे हालात हैं, क्षमता का अगर पूरी ईमानदारी से सदुपयोग नहीं किया गया तो पूर्वकथित रिक्तता की सृष्टि होगी और अण्णा की तरह किसी त्राणदाता के उभड़ने के लिए पथ प्रशस्त होता रहेगा, चमत्कारिक समारोह आयोजित होते रहेंगे.

ypvsj@yahoo.ca

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-1, अंक-11 (इंटरनेट संस्करण : 62)
जनवरी 2012

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. यतेन्द्र वार्ष्णी, कैनेडा

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
भावना सक्सैना, सूरीनाम
दीपक मशाल, यू.के.
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत
गंगानन्द झा, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी सुषमा शर्मा के लिए बॉक्स कारूगेटर्स एण्ड ऑफसेट प्रिंटर्स, 14-बी, आई सेक्टर, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल द्वारा मुद्रित एवं डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल से प्रकाशित.

>> 8

चक्रव्यूह में फँसी हिंदी

>> 11

भीगी भागी-सी गरमी

>> 16

मृत्यु उत्सव

>> 26

सुधारकों की भूल

इस अंक में

मुद्दा :	प्रताप नारायण सिंह	4
	भूपेन्द्र कुमार दवे	6
	डॉ. मान्धाता सिंह	8
रम्य-रचना :	डॉ. गौतम सचदेव	11
विचार :	अजन्ता शर्मा	14
लघुकथा :	दीपक चौरसिया 'मशाल'	15
व्याख्या :	कौशलेन्द्र प्रपन्न	16
आँखों देखी :	हरमिन्दर सिंह	20
ब्लॉग चर्चा :	वन्दना गुप्ता	22
यात्रा-वृत्तांत :	डॉ. प्रताप सहगल	24
नजरिया :	गणेश शंकर विद्यार्थी	26
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	29
गीता-सार :	अनिल विद्यालंकार	30
पंचतंत्र :		31
महाभारत :		34
कविता :	जेन भण्डारी	36
	आशा जोगलेकर	37
	डॉ. सुरेश राय	38
	प्राण शर्मा	39
	सत्यनारायण शर्मा 'कमल'	40
	नवीन सी चतुर्वेदी	41
ताँका :	कमला निखुर्पा	42
ग़ज़ल :	देवी नागरानी	43
	डॉ. महेन्द्र कुमार अग्रवाल	44
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	45
कहानी :	ओमलता आखौरी	46
व्यंग्य :	राम किशन सिंह 'भँवर'	49
किताब :	चंद्र मौलेश्वर प्रसाद	51
सिनेमा की बात :	रामकिशोर पारचा	53

प्रताप नारायण सिंह

तकनीकी स्नातक. साहित्य, संगीत एवं लेखन में रुचि. खण्ड काव्य 'सीता एक नारी' शीघ्र प्रकाश्य. सम्प्रति : डालमिया ग्रुप की कंपनी में महाप्रबंधक.

सम्पर्क : बी-२७३, पॉकेट-२, केन्द्रीय विहार, सेक्टर- ८२, नॉएडा. ईमेल : pratapsingh1971@gmail.com

मुद्दा

किस ओर जा रही है राजभाषा!

'मैं दो 'वीक' के बाद फिर 'विज़िट' करूँगा और 'सिचुएशन' को 'एग्जामिन' करके 'फ़ाइनल' 'रिपोर्ट' 'सबमिट' करूँगा.' यह है आज महानगरों के बोलचाल की भाषा. सरलता से बोली जाने वाली और लोगों को आसानी से समझ में आने वाली भाषा. किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या यह हिन्दी का विकास है? किसी भी भाषा को मात्र सर्वनाम, सहायक क्रियाओं और वाक्य विन्यास के सहारे कितनी दूर तक लेकर जाया जा सकता है? क्या मात्र लिपि ही किसी भाषा की सामर्थ्य होती है? उसके विकास और समृद्धता में शब्दों का कोई योगदान नहीं होता है?

केंद्रीय गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग के परिपत्र में लिए गए निर्णय का मूल बिंदु 'भाषा की सुगमता' है. किन्तु उसमें कर्मचारियों की सुगमता अधिक और राजभाषा का विकास कम लक्षित हो रहा है. ऐसा नहीं है कि इसे राजभाषा के विरुद्ध कहकर इसमें समाविष्ट सारी बातों को एकदम से नकारा जा सकता है और न ही सारी बातें ज्यों की त्यों स्वीकार कर लेने योग्य लग रही हैं. सुगमता और सहजता आवश्यक भी है. किन्तु उसके स्वरूप का निर्धारण एक बड़ा प्रश्न है. जो स्वरूप परिपत्र में उभर कर आया है उससे तो यही प्रतीत होता है कि परिपत्र तैयार करने वाले लोग यह समझते हैं कि हिन्दी का विकास देवनागरी लिपि के प्रचार तक ही सीमित है. यदि वे ऐसा समझते हैं तो उसका भी एक प्रबल कारण है. और वह कारण है हमारी शिक्षा व्यवस्था. हालाँकि इस व्यवस्था का हमारे पास कोई विकल्प भी नहीं है. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ती प्रतिस्पर्धा और हमारे पास मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक सुदृढ़ आर्थिक ढाँचे की कमी के कारण आज यह व्यवस्था हमारी आवश्यकता बन चुकी है. आज प्रारम्भिक कक्षाओं में हिन्दी मात्र एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है. अन्य सारे विषयों का माध्यम अंग्रेजी होता है. ऐसे में देवनागरी लिपि में लिखना-पढ़ना भी एक बड़ी बात है. जब हमारी सोच ही अंग्रेजी में विकसित होगी तो उसकी अभिव्यक्ति हिन्दी में करना सदैव एक कठिन कार्य ही होगा.

किन्तु यह प्रश्न तो अवश्य उठता है कि सरकारी नीतियाँ हिन्दी के विकास में कितनी सहायक सिद्ध हो रही हैं? सरकारी काम काज को हिन्दी में किए जाने के पीछे प्रयोजन था 'राजभाषा को विकसित करना'. किसी भी निर्माण, विकास, उत्थान और परिवर्तन के लिए एक कटिबद्धता की आवश्यकता होती है. एक दृढ निश्चय और योजनाबद्ध क्रियान्वयन की आवश्यकता होती है. ऐसे कार्य बहुत सरलता से नहीं होते हैं. मार्ग में कुछ कठिनाईयाँ तो आती ही हैं. हमें उन कठिनाईयों से पार पाना होगा. पार पाने का अर्थ पलायन कभी नहीं होता है.

आज हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में जो कठिनाईयाँ सामने आ रही हैं या जिसे कठिनाई बताया जा रहा है यदि उस पर दृष्टिपात करें तो कई प्रश्न उठ खड़े होते हैं. सबसे पहला प्रश्न तो यह कि 'शब्द की क्लिष्टता' का क्या अर्थ है? क्या जो शब्द क्लिष्ट कहे जाते हैं उनका गठन किसी अन्य वर्णमाला के अक्षरों से होता है? किसी भी भाषा की एक ही वर्णमाला होती है. हर वर्णमाला के अक्षर सीमित होते हैं और हर शब्द उन्हीं अक्षरों से बनता है. फिर कोई शब्द क्लिष्ट कैसे हो सकता है. वास्तव में शब्द 'क्लिष्ट' नहीं होते अपितु

'अपरिचित' होते हैं. जिस तरह अपरिचित व्यक्ति के साथ अनौपचारिक व्यवहार करते हुए हिचकिचाहट होती है उसी प्रकार अपरिचित शब्दों के प्रयोग में हिचकिचाहट होती है. अब जो अपरिचित है उससे परिचय बढ़ाएंगे तभी तो आपसी मेल-जोल बढ़ेगा. तभी हिचक समाप्त होगी. यदि उससे किनारा कर लिया जाएगा तो दूरियाँ ही बढ़ेंगी. फिर उसका विकास संभव नहीं है.

दूसरी बात क्लिष्ट या अपरिचित शब्दों को चिह्नित करने का तरीका क्या होगा? क्योंकि यह सबके लिए भिन्न-भिन्न होता है. इसका आधार भाषाई परिवेश होता है. हिंदी का कोई शब्द जो एक दक्षिण भारतीय व्यक्ति या महानगरीय व्यक्ति को क्लिष्ट लगता है वही शब्द हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रहने वालों को क्लिष्ट या अपरिचित नहीं लगता है. राजभाषा विभाग के परिपत्र में जिन

> समृद्धि का अर्थ होता है कि हमारे पास जो कुछ है उसमें वृद्धि होना. यह नहीं कि जो है उसे बदल कर दूसरी चीज ले लेना.

शब्दों को क्लिष्ट बताया गया है उनमें से अनेक शब्द उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार जैसे हिन्दी भाषी क्षेत्रों में आम बोलचाल में प्रयोग किए जाते हैं. वहाँ ये शब्द किसी को भी अपरिचित नहीं लगते. और फिर यदि कुछ शब्द, किसी विशेष समूह के लोगों को क्लिष्ट लगते हैं तो भी राजभाषा के विकास हेतु उन्हें सीखने और समझने का प्रयास क्यों नहीं किया जाय. वही लोग जिनके लिए आरम्भ में अंग्रेजी का हर शब्द अपरिचित होता है और वे प्रयास करके पूरी की पूरी भाषा सीख लेते हैं, हजारों शब्दों को आत्मसात कर लेते हैं, उन्हीं के लिए हिन्दी के कुछ शब्दों को आत्मसात करना इतना दुरूह क्यों लगने लगता है?

तीसरी बात परिपत्र में 'कामकाज' की भाषा और 'साहित्यिक भाषा' के बीच जिस आधार पर रेखा खींची जा रही है वह आधार तर्क सम्मत नहीं प्रतीत हो रहा है. यह ठीक है कि बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में थोड़ा अंतर अवश्य होता है और वह अंतर हर भाषा में होता है. दोनों की आवश्यकता भी होती है और प्रयोजन भी होता है. जब हम किसी से बातचीत करते हैं तो हमारे पास सम्प्रेषण के अन्य साधन भी उपलब्ध होते हैं जैसे हमारे चेहरे के भाव, हमारी वाणी का उतार-चढाव, हमारे हाथों की गति, आँखों का भाव इत्यादि किन्तु जब हम लिखते हैं उस समय ये सहायक साधन उपलब्ध नहीं होते हैं और भावनाओं और विचारों का सारा भार शब्दों को वहन करना पड़ता है. इस तरह से लिखना पड़ता है कि हमारी भावनाएँ और विचार ठीक उसी गहनता से संप्रेषित हो जाएँ जिस गहनता से हमारे मन में उपजी होती हैं. ऐसे में हमें बिल्कुल सटीक शब्दों का, अलंकारों का, शब्द युग्मों, मुहावरों, विशेष वाक्य-विन्यासों इत्यादि का प्रयोग करना पड़ता है. ऐसी भाषा को हम साहित्यिक भाषा कहते हैं. किन्तु जब हम बात करते हैं तो हमारे चेहरे के भाव, वाणी का आरोह-अवरोह हमारी भावनाओं को संप्रेषित कर देता है. और हम छोटे-छोटे वाक्यों के माध्यम से बिना किसी अलंकार या विशेष वाक्य विन्यास के अपनी बात कह लेते हैं. उस भाषा को बोलचाल की भाषा कहते हैं. छात्र या विद्यार्थी को 'स्टूडेंट' कहने से भाषा के सामान्य या साहित्यिक होने का अर्थ समझ से परे है.

हिन्दी के विकास में अन्य भाषा के शब्दों को आत्मसात करने के बिंदु पर इसके पोषकों के बीच भी मतभिन्नता सदैव रही है. एक वर्ग भाषा की शुद्धता का समर्थक है तो दूसरे वर्ग का यह कहना है कि अन्य भाषा के शब्दों के समावेश से हिन्दी भाषा सुगम और समृद्ध होगी. यदि सुगमता की बात करें तो व्यक्तिवाचक संज्ञा से शुरू होकर आज अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हिन्दी वाक्यों में क्रिया तक होने लगा है. निःसंदेह लोगों को यह सुगम लग रहा होगा तभी ऐसा हो रहा है. किन्तु कोई भी ऐसा प्रयोग जो भाषा के स्वरूप को नष्ट करके उसे सुगम बनाए उस प्रयोग का क्या अर्थ है. जब हिंदी रहेगी ही नहीं तो फिर उसकी सुगमता का भी कोई अर्थ नहीं बचता है. आज हम अपनी बोलचाल की भाषा को हिन्दी नहीं हिंग्लिश कहते हैं. भाषा सुगम नहीं हुई अपितु बदल गई.

जहाँ तक शब्दकोष के समृद्धि की बात है तो सभी भाषाओं ने दूसरी भाषाओं के कुछ शब्दों को अपनाया है. किन्तु अपनाए गए शब्द प्रायः ऐसे होते हैं जो किसी विशेष परिवेश, विशेष कार्य, विशेष वस्तु से सम्बंधित होते हैं. ऐसे शब्दों के समावेश का आरम्भ हिन्दी में भी बहुत पहले हो चुका है. समृद्धि का अर्थ होता है कि हमारे पास जो कुछ है उसमें वृद्धि होना. यह नहीं कि जो है उसे बदल कर दूसरी चीज ले लेना. हिंदी भाषा के शब्दकोष में वृद्धि उन शब्दों को ग्रहण करने से अवश्य हुई है जो कि हिन्दी में पहले से उपलब्ध नहीं थे या फिर उनके लिए कोई बहुत सटीक शब्द नहीं था जैसे - बैटरी, स्टेशन, टिकेट, पुलिस, सिग्नल, राडार, इलेक्ट्रान, प्रोटान, यूरेनियम इत्यादि. ऐसी संज्ञायों को आत्मसात करना आवश्यक भी है. जिनका अन्वेषण और नामकरण विदेशों में होता है उनके लिए शब्द-युग्मों का प्रयोग कर निकटवर्ती अर्थ देनेवाला कोई शब्द गढ़ लेने से अच्छा तो यही है कि उन शब्दों को यथावत ग्रहण कर लिया जाय. किन्तु छात्र, विद्यालय, परिसर, भण्डार जैसे प्रचलित हिन्दी के शब्दों के लिए अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग में हिन्दी भाषा की कोई समृद्धता दिखाई नहीं देती है.■

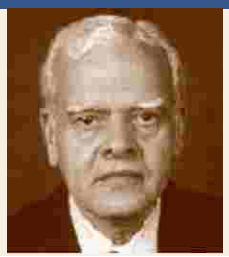

भूपेन्द्र कुमार दवे

जन्म : २१ जुलाई १९४१. शिक्षा : बी.ई. आनर्स, एफ.आई.ई.ए. कहानी और कविताओं का आकाशवाणी से प्रसारण. प्रकाशित कृतियाँ : खंड काव्य : तार-तार जीवन, तिनका-तिनका मन, बूँद-बूँद आँसू. उपन्यास : जिन्दगी पिघलते मोम-सी. काव्य संग्रह : काँपते हैं गीत मेरे, अभिलाषा, मेरी अपनी मधुशाला, स्वर का श्रृंगार एवं बाल गीत. गज़ल संग्रह : मेरी गुल ज़मी, जश्न-ए-गम. कहानी संग्रह : वापसी, युद्धबंदी, बबूल के काँटे, मुखाग्नि, बंद दरवाजे और अन्य कहानियाँ और बारिश. लघुकथा संग्रह : स्वतंत्र कर्मभूमि, ईश्वर के दर्शन. मध्यप्रदेश विद्युत मंडल द्वारा कथा सम्मान. त्रिवेणी परिषद द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त. संप्रति : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल.

सम्पर्क : ४३, सहकार नगर, रामपुर, जबलपुर. ईमेल : b_k_dave@rediffmail.com

मुद्दा

आमजन की भाषा

किसी भाषा को 'आमजन की भाषा' बनाने के लिये उसके कठिन व अबोधगम्य शब्द हटाने का अर्थ चाहे कुछ भी हो, पर इतना तो सभी बुद्धिजीवी जानते हैं कि 'आमजन की भाषा' 'बोली' कहलाती है. बोली सीमित शब्दों का प्रयोगकर संवाद पूरा कर लेने की विधा है. वह पहले ही कठिन व अबोधगम्य शब्दों को दरकिनार कर चुकी होती है. जिन कठिन व अबोधगम्य शब्दों को दरकिनार नहीं किया जा सकता, उसे बोली अपनी सुविधा के अनुसार उच्चारित करने में माहिर होती है. वह उस शब्द का अविष्कार भी कर लेती है जो विश्व की इतर भाषा का रूपांतरित स्वरूप होती है. उदाहरणार्थ : टमाटर, बोतल, कनिस्तर, पलस्टर, पेंचकस, पिंचिस आदि. कहा भी गया है कि बोली बोलते-बोलते बनती है. उसके बनाने के लिये किसी विशेषज्ञों की आवश्यकता नहीं होती. वह तो गलत उच्चारणों को भी मान्यता प्रदान करती है.

सारे विश्व की आम जनता 'बोली' का ही प्रयोगकर अपने संवाद पूरा करती है. परिमार्जित भाषा का प्रयोग केवल साहित्यकार, कवि व दार्शनिक ही करते हैं. कहते हैं कि अंग्रेजी शब्दकोश के सबसे अधिक शब्दों का उपयोग करने वाले एकमात्र शेक्सपियर ही रहे हैं. 'बोली' को सबसे ज्यादा दिक्कत तब आती है जब उसे वैज्ञानिक शब्दों से उलझना पड़ता है. वैज्ञानिक शब्द 'शब्दकोश' के नहीं होते, विशेषकर जब वैज्ञानिकों को अपने शोध को परिभाषित करने सुयोग्य शब्द 'शब्दकोश' में नहीं मिलते या फिर जब उनमें अपनी शोध के अनोखे स्वरूप को गौरवान्वित करने व उसकी अलग व्यापारिक पहचान बनाने की लालसा जाग्रत होती है. कालान्तर में ये शब्दकोश में आ जाते हैं और उनके आ जाने से भाषा अपने आप समृद्ध होने जैसा अनुभव करने लगती है.

वैज्ञानिक शोध से जुड़े शब्दों का चयन करने में वैज्ञानिक प्रायः अपनी स्वतः की भाषा को आधार बनाते हैं. दूसरी अन्य भाषायें बिना किसी प्रयास के उन्हें अपना लेती हैं, जो स्वाभाविक प्रक्रिया है. किन्तु कुछ देश की भाषायें अपने अनुसार इनके लिये शब्द बना लेती हैं. यह काम उस देश के बुद्धिजीवियों का होता है. भारत में बुद्धिजीवियों की कमी नहीं है, इसलिये हिन्दी ने रेड़ियो व टेलीविजन के लिये आकाशवाणी व दूरदर्शन शब्द खोज लिये. ये शब्द सहज व बोधगम्य होने के साथ-साथ साहित्यिक माधुर्य लिये हुए हैं. ऐरोप्लेन के लिये वायुयान व हवाईजहाज जैसे शब्द इजाद करना भी बुद्धि की परिपक्वता को दर्शाता है. मिश्रित भाषा के सुन्दर शब्द भी हिन्दी में मिलते हैं, जैसे रेलगाड़ी, डबलरोटी आदि. ये सारे शब्द उच्चारित करने में सहज व लिखने में भी सरल हैं. अधिकांश अंग्रेजी शब्द संयुक्ताक्षर होने के कारण तथा अपने विचित्र हिज्जे-प्रणाली (spelling system) के कारण बेहद कठिन हैं. 'बट' व 'पुट' की तरह असंख्य हास्यास्पद उदाहरण इसमें देखने को मिलते हैं. हिन्दी की देवनागरी लिपि तो वैज्ञानिक है. इस लिपि में सारे स्वर व सारे व्यंजन के लिये अलग-अलग चिह्न हैं और सारी आवाजों को हू-ब-हू लिखा जा सकता है तथा इस लिपि में लिखा गया शब्द किसी भी व्यक्ति द्वारा एक जैसा ही पढ़ा जाता है. यह लिपि न तो चीनी की तरह कठिन है और न ही अंग्रेजी की तरह विचित्र निःशब्द (silent), यति (accent), एक अक्षर के दो उच्चारण तथा सीमित स्वर की नहीं है.

फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस दिन हमारे देश में बुद्धिजीवियों की कमी हो जावेगी तो अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं का सहारा हिन्दी को लेना ही पड़ेगा. या फिर जब बुद्धिजीवी सरल शब्द की खोज न कर सकें तो दूसरी भाषा के शब्द हिन्दी में ले लेने की हिचकिचाहट भी नहीं होनी चाहिये. बल्कि ऐसे शब्दों को हिन्दी के शब्दकोश में सम्मलित भी कर लेना चाहिये. इससे भाषा समृद्ध होती है. अंग्रेजी में प्रतिवर्ष ऐसे कई शब्दों को सम्मलित किया जाता है जो अन्य भाषा के हैं, ज्यादा प्रचलित हैं और विशेषकर उनके सही अर्थ का बोध प्रतिपादित करने अंग्रेजी में समानार्थी शब्द नहीं हैं.

वर्षों पूर्व loot शब्द इसी तरह अंग्रेजी में आया. अंग्रेजी में हिन्दी की तरह लूटना, ठगना व डकैती करना शब्द नहीं थे, सो अंग्रेजी ने निःसंकोच loot, thug व decoity अपना लिये. 'पराठा' शब्द हाल ही में अंग्रेजी में ले लिया गया है. यह काम उन्होंने आम आदमी के भरोसे न छोड़कर बुद्धिजीवियों को सौंप रखा है. इसकी एक समिति है. इस तरह उन्होंने बताया है कि किस तरह भाषा समृद्ध बनाई जा सकती है. इसका मतलब कदाचित यह नहीं कि हिन्दी बेधड़क अंग्रेजी

शब्दों को अपने शब्दकोश में सम्मलित करती जावे. समिति केवल उन्हीं शब्दों को चुने जिसके लिये हिन्दी में समानार्थी शब्द नहीं हैं, जिनके लिये सरल हिन्दी शब्द का अविष्कार नहीं किया जा सकता और जो स्वयं बोलने व लिखने में क्लेष्टप्रद नहीं हैं.

ऐसा करने से भाषा की हत्या नहीं होती बल्कि वह समृद्ध होती है. यद्यपि किसी शब्द के गलत प्रयोग या गलत मायने में प्रयोग से हम प्रायः कह बैठते हैं, 'हे भले मानुष! भाषा की हत्या मत करो.' कोई भी भाषा मरती नहीं. उसका दुरुपयोग हो सकता है, उसे विकृत रूप दिया जा सकता है, उसमें गंदे लफ्जों को भरकर बिगाड़ा जा सकता है. ऐसे साहित्य को बुद्धिजीवियों ने नकारने की पहल करनी चाहिये. आम जनता तो शब्दों के गलत अर्थ निकालना, भाषा का मखौल उड़ाना मनोरंजन समझती है और उसे ऐसा करने से रोका भी नहीं जा सकता. आज आम जनता चतुर है. अपने कथन से तुरंत मुकर जाना जानती है. यह प्रवीणता तो जनता के प्रतिनिधियों में आये दिन देखने मिलती है. पर क्या इससे भाषा मरती है?

संस्कृत और लेटिन भाषा मरी नहीं हैं बल्कि वे हिन्दी व अंग्रेजी की आत्मास्वरूप बन गई हैं. संस्कृत भाषा का माधुर्य आज भी हिन्दी भाषा में परिलिक्षित होता है, विशेषकर जब गूढ़ अर्थ की व्याख्या हिन्दी में दी जानी होती है. हिन्दी में संस्कृत भाषा के शब्दों का तो भंडार है. संस्कृत सबसे ज्यादा बोधगम्य भाषा रही है. एक उदाहरण है 'हृदयम्' शब्द का यह शब्द मात्र हृदय ही नहीं पर उसकी क्रियाओं को भी दर्शाता है. 'हृ' याने अपहरण करना या प्राप्त करना, 'द' याने अवखंडन या विश्लेषण करना और 'यम्' याने नियमन या नियमबद्ध करना. इस तरह यह छोटा-सा शब्द हृदय की तीनों क्रियाओं को वर्णित करता है यथा रक्त प्राप्त करना फिर उसका विश्लेषण करना और तब धमनियों में उसका नियमन करना. 'हृ' का आकार भी हृदय के रेखांकित चित्र की तरह है. भाषा में शब्दों का इस तरह वस्तु का

> *काव्य में अंतरमन की पुकार, लेख में परिपक्व विचारधारा की उत्तुंग लहरें और मानव संस्कृति में पवित्रता की अलग पहचान भाषा का श्रृंगार होती है. और अपने माधुर्य के कारण ऐसी भाषा 'बोली' को भी मधुर बनने के लिये उत्साहित कर सकती है.*

प्रतीक बन आना बताता है कि भाषा कितनी वैज्ञानिक है. शायद अंग्रेजी में हृदय से ही 'हार्ट' शब्द बना है पर इसमें हृदय की क्रियाओं का आभास नहीं होता. इसी तरह 'प्रकृति' शब्द कृति के पुनरावृत्ति को दर्शाता है और प्रकृति वास्तव में cyclic order में काम करती है. ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो संस्कृत भाषा के शब्दों में निहित बोधगम्यता को दर्शाते हैं.

अगर दूसरी अन्य भाषा में ऐसी ही बोधगम्यता है तो उसके शब्दों को हिन्दी में लेने से परहेज नहीं होना चाहिये. एच.जी. वेल्स ने 'दि आऊटलाईन आफ हिस्ट्री' में लिखा है कि यूरोप से लेकर भारत तक की भाषाओं में एकरूपता है. संस्कृत के पितर, मातर शब्द के अपभ्रंश से ही अंग्रेजी में फादर, मदर, जर्मन में vater, mutter लेटिन में pater, mater, ग्रीक में pater, meter फ्रेंच में pere, mere, अरमेनियन में hair, mair और हिन्दी में पिता, माता शब्द बने हैं. इसी प्रकार भ्रातर व स्नुषा शब्द से brother और sister शब्द बने हैं. इसे Grimm's Law कहा गया है. संस्कृत भाषा के चिह्न व व्याकरण विश्व की इन प्रमुख भाषाओं में मिलते हैं. हिन्दी में वैसे भी आज अरबी, फारसी, फ्रेंच आदि भाषाओं के शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं. अंग्रेजी के शब्द हिन्दी में कम ही आये हैं क्योंकि इस भाषा में संयुक्ताक्षरों की भरमार है और वे सही उच्चारण की दृष्टि से कठिन ही प्रतीत होते हैं. और फिर हमारे देश की अस्सी प्रतिशत आबादी गाँव में बसती है, उन्हें अंग्रेजी शब्दों का बोध कराना भी जटिल काम है. वे हवा शब्द से परिचित हैं पर वायु शब्द शायद उन्हें कठिन लगे. ऐसे में हवाई जहाज शब्द तो उनकी समझ में आ जावेगा पर वायुयान कुछ कठिन ही हो जावेगा. ऐरोप्लेन तो उनके लिये बोझ ही होगा. सच मानिये, यदि किसी भाषा को सरल बने रहना है तो उसने अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल करना ही नहीं चाहिये.

कुछ लोगों का कहना है कि कम्प्यूटर के कारण अंग्रेजी विश्व भर में छा रही है. उनका मानना है कि इस सदी के अंत तक कई भाषायें अपना अस्तित्व खो बैठेंगी. परन्तु विज्ञान हर चीज का तोड़ ढूँढ़ निकालता है. विश्व की सारी प्रमुख भाषाओं ने कम्प्यूटर में अपनी अलग पहचान बना ली है – हिन्दी ने भी. बल्कि कम्प्यूटर के कारण अंग्रेजी को ही कठोर प्रहार सहने पड़ रहे हैं. कम्प्यूटर ने अपनी सरल अंग्रेजी बना ली है जिसमें बड़े शब्द हट रहे हैं और spelling बदल रही है. पर इससे अंग्रेजी का कुछ नहीं बिगड़ने वाला क्योंकि अंग्रेजी के साहित्यकारों ने उसे पहले ही अत्यंत व्यापक, समृद्ध व विशाल रूप दे दिया है.

अभी भी हिन्दी के साहित्यकार, कवि व दार्शनिक इस ओर प्रयास कर सकते हैं. वे उच्चकोटि के विचारक रहे हैं. उन्होंने शून्य व अनंत की कल्पना की, ईश्वर की कल्पना का अद्‌भुत संसार रचा, सर्वप्रथम मानव शरीर की संरचना व शल्यक्रिया का प्रारंभ किया, सप्त स्वरों की पहचान कराई, सप्त रंगों का प्रथम उल्लेख वेद में किया, ध्वनि के सारे संभावित स्वरों व व्यंजनों को अपनी भाषा में लिया, ईसा पूर्व ६०० से कथा व कहानी की विधा विश्व को प्रदान की और काव्य के रूप को लघु व दीर्घ मात्रा पर आधारित करने की सरल प्रणाली ईजाद की. वे अच्छी तरह जानते हैं कि भाषा को समृद्ध बनाने के लिये उच्चकोटि के साहित्य निर्माण की आवश्यकता होती है. काव्य में अंतरमन की पुकार, लेख में परिपक्व विचारधारा की उत्तुंग लहरें और मानव संस्कृति में पवित्रता की अलग पहचान भाषा का श्रृंगार होती है. और अपने माधुर्य के कारण ऐसी भाषा 'बोली' को भी मधुर बनने के लिये उत्साहित कर सकती है.

हमारे हिन्दी के साहित्यकार, कवि व विचारक वृहत साहित्य रचना में एकजुट हो लग जावें, यही प्रार्थना है. आईये, हम निर्विकार रूप से ऐसा वृहत व सुन्दर हिन्दी साहित्य का निर्माण करें कि हम हिन्दी भाषी भी कह सकें :

भाषासु मुख्या मधुरा दिव्यागीर्वाण भारती।
तस्मादपि काव्यं मधुरं, तस्मादपि सुभाषितम्।।■

डॉ. मान्धाता सिंह

प्रख्यात पत्रकार एवं इतिहासकार. गाजीपुर के ग्रामीण अंचल में जन्म. बनारस के उदय प्रताप कॉलेज से स्नातक. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम.ए. एवं यहीं से इंडोनेशिया के प्राचीन धर्मशास्त्रों पर पी.एच.डी. की उपाधि. विभिन्न समाचार पत्रों से जुड़े रहे. सम्प्रति - इंडियन एक्सप्रेस के हिंदी दैनिक जनसत्ता के कोलकाता संस्करण में कार्यरत.

सम्पर्क : drmandhata@gmail.com

मुद्दा

वोट और सत्ता के चक्रव्यूह में फँसी हिंदी

दुनिया में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में हिंदी तीसरे नंबर पर है मगर भारत में ही उसकी दुर्दशा किसी से छुपी नहीं है. राजभाषा होने के कारण इसके नाम पर सरकारी अनुदानों और बजट की लूटखसोट तो खूब होती मगर विकास का ग्राफ निरंतर नीचे ही गिरता जा रहा है. हिंदी दिवस मनाकर हिंदी में काम करने के लच्छेदार भाषण दिए जाते हैं. हिंदी अधिकारी, जिन्हें अधिकार के साथ हिंदी के साथ नाइंसाफी करने का लाइसेंस मिला है, ही इतने सचेत नहीं हैं कि हिंदी का कल्याण हो सके. कुछ अड़चनों का रोना रोकर अपनी जिम्मेदारी निभाने की बात समझा दी जाती है. आज अंग्रेजी माध्यम से बच्चों को पढ़ाना शौक और शान है. अंग्रेजी के मुकाबले हिंदी ही क्या किसी अन्य भारतीय भाषा में पढ़ने वाले बच्चे दोयम समझे जाते हैं. अभी कुछ दिन पहले बनारस के पास अपने गांव मैं गया था. पता चला कि वहां तमाम कान्वेंट स्कूल खुल गए हैं. गांव का सरकारी प्राइमरी स्कूल, जिसमें खांटी हिंदी में पढ़ाई होती, अब वीरान सा दिखता है. लोगों का तर्क है कि आगे जाकर नौकरी तो अंग्रेजी पढ़नेवालों को मिलती है तो फिर हम हिंदी में ही पढ़कर क्या करेंगे. यह चिंताजनक है और देश की शिक्षा व्यवस्था की गंभीर खामी भी है. जब रोजगार हासिल करने की बुनियादी ज़रूरतों में परिवर्तन हो रहा है तो बेसिक शिक्षा प्रणाली में भी वही परिवर्तन कब लाए जाएंगे. सही यह है कि वोट के चक्रव्यूह में फंसी भारतीय राजनीति हिंदी को न तो छोड़ पा रही है नही पूरी तरह से आत्मसात ही कर पा रही है. इसी राजनीतिक पैंतरेबाजी के कारण तो हिंदी पूरी तरह से अभी भी पूरे देश की संपर्क भाषा नहीं बन पाई है. अब वैश्वीकरण की आंधी में अंग्रेजी ही शिक्षा व बोलचाल का भाषा बन गई है. हिंदी जैसा संकट दूसरी हिंदी भाषाओं के सामने भी मुंह बाए खड़ा है मगर अहिंदी क्षेत्रों में अपनी भाषा के प्रति क्षेत्रीय राजनीति के कारण थोड़ी जागरूकता

> आज अंग्रेजी माध्यम से बच्चों को पढ़ाना शौक और शान है. अंग्रेजी के मुकाबले हिंदी ही क्या किसी अन्य भारतीय भाषा में पढ़ने वाले बच्चे दोयम समझे जाते हैं.

है. तभी तो पश्चिम बंगाल जैसे राज्य में अंग्रेजी को प्राथमिक शिक्षा में तरजीह दी जाने लगी है. दक्षिण के राज्य तो इसमें सबसे आगे हैं. कुल मिलाकर हिंदी हासिए पर जा रही है.

अब तो हिंदी की और भी शामत आने वाली है. नामवर सिंह जैसे हिंदी के नामचीन साहित्यकार तक स्थानीय बोलियों में शिक्षा की वकालत करने लगे हैं. अगर सचमुच ऐसा हो जाता है तो सोचिये कि जिन राज्यों में अब तक हिंदी ही प्रमुख भाषा थी वहीं से भी उसे बेदखल होना पड़ेगा. यह हिंदी का उज्ज्वल भविष्य देखने वालों के लिए चिंता का विषय होना चाहिए. अगर यही हाल रहा तो आंकड़ों में हिंदी कब तक पूरी दुनिया में तीसरे नंबर की सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा रह जाएगी. क्या रोजी रोटी भी दे सकेगी हिंदी? सरकारी ठेके पर कब तलक चलेगी हिंदी? देश की अनिवार्य संपर्क व शिक्षा की भाषा कब बन पाएगी हिंदी.

> *अगर हिंदी को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अपनाया नहीं गया तो निश्चित तौर पर इसकी जगह अंग्रेजी ले लेगी और तब क्षेत्रीय भाषाओं के भी वजूद का संकट खड़ा हो जाएगा. अगर हिंदी बचती है तो क्षेत्रीय भाषाओं का भी वजूद बच पाएगा अन्यथा अंग्रेजी इन सभी को निगल जाएगी.*

विश्व की दस प्रमुख भाषाओं संबंधी तथ्य गौर करने लायक हैं. चीनी लोगों की भाषा मंदरीन को बोलने वाले एक बिलियन लोग हैं. मंदरीन बहुत कठिन भाषा है. किसी शब्द का उच्चारण चार तरह से किया जाता है. शुरू में एक से दूसरे उच्चारण में विभेद करना मुश्किल होता है. मगर एक बिलियन लोग आसानी से मंदरीन का उपयोग करते हैं. मंदरीन में हलो को नि हाओ कहा जाता है. यह शब्द आसानी से लिख दिया मगर उच्चारण तो सीखना पड़ेगा.

अंग्रेजी बोलने वाले पूरी दुनिया में ५०८ मिलियन हैं और यह विश्व की दूसरे नंबर की भाषा है. दुनिया की सबसे लोकप्रिय भाषा भी अंग्रेजी ही है. मूलतः यह अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इग्लैंड, जिम्बाब्वे, कैरेबियन, हांगकांग, दक्षिण अफ्रीका और कनाडा में बोली जाती है. हलो अंग्रेजी का ही शब्द है.

भारत की राजभाषा हिंदी को बोलने वाले पूरी दुनिया में ४९७ मिलियन हैं. इनमें कई बोलियां भी हैं जो हिंदी ही हैं. ऐसा माना जा रहा है कि बढ़ती आबादी के हिसाब से भारत कभी चीन को पछाड़ सकता है. इस हालत में नंबर एक पर काबिज चीनी भाषा मंदरीन को हिंदी पीछे छोड़ देगी. फिलहाल हिंदी अभी विश्व की तीसरे नंबर की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है. हिंदी में हलो को नमस्ते कहते है.

स्पेनी भाषा बोलने वालों की तादाद ३९२ मिलियन है. यह दक्षिणी अमेरिकी और मध्य अमेरिकी देशों के अलावा स्पेन और क्यूबा वगैरह में बोली जाती है. अंग्रेजी के तमाम शब्द मसलन टारनाडो, बोनान्जा वगैरह स्पेनी भाषा ले लिए गए हैं. स्पेनी में हलो को होला कहते हैं.

रूसी बोलने वाले दुनियाभर में २७७ मिलियन हैं. और यह दुनियां की पांचवें नंबर की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है. संयुक्त राष्ट्र की मान्यता प्राप्त छह भाषाओं में से एक है. यह रूस के अलावा बेलारूस, कजाकस्तान वगैरह में बोली जाती है. रूसी में हलो को जेद्रावस्तूवूइते कहा जाता है.

दुनिया की पुरानी भाषाओं में से एक अरबी भाषा बोलने वाले २४६ मिलियन लोग हैं. सउदी अरब, कुवैत, इराक, सीरिया, जार्डन, लेबनान, मिस्र में इसके बोलने वाले हैं. इसके अलावा मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थ कुरान की भाषा होने के कारण दूसरे देशों में भी अरबी बोली और समझी जाती है. १९७४ में संयुक्त राष्ट्र ने भी अरबी को मान्यता प्रदान कर दी. अरबी में हलो को अलसलामवालेकुम कहा जाता है.

पूरी दुनिया में २११ मिलियन लोग बांग्ला भाषा बोलते हैं. यह दुनिया की सातवें नंबर की भाषा है. इनमें से १२० मिलियन लोग तो बांग्लादेश में ही रहते है. चारों तरफ से भारत से घिरा हुआ है बांग्लादेश. बांग्ला बोलने वालों की बाकी जमात भारत के पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा व पूर्वी भारत के असम वगैरह में भी है. बांग्ला में हलो को एईजे कहा जाता है.

१२वीं शताब्दी तक बहुत कम लोगों के बीच बोली जानेवाली भाषा पुर्तगीज आज १९१ मिलियन लोगों की दुनिया का आठवें नंबर की भाषा है. स्पेन से आजाद होने के बाद पुर्तगाल ने पूरी दुनिया में अपने उपनिवेशों का विस्तार किया. वास्कोडिगामा से आप भी परिचित होंगे जिसने भारत की खोज की. फिलहाल ब्राजील, मकाउ, अंगोला, वेनेजुएला और मोजांबिक में इस भाषा के बोलने वाले ज्यादा है. पुर्तगीज में हलो को बोमदिया कहते हैं.

मलय-इंडोनेशियन दुनिया की नौवें नंबर की भाषा है. दुनिया के सबसे ज्यादा आबादी के लिहाज से मलेशिया का छठां नंबर है. मलय-इंडोनेशियिन मलेशिया और इंडोनेशिया दोनों में बोली जाती है. हजारों द्वीपों में अवस्थित मलेशिया और इन्डोनेशिया की भाषा एक ही मूल भाषा से विकसित हुई

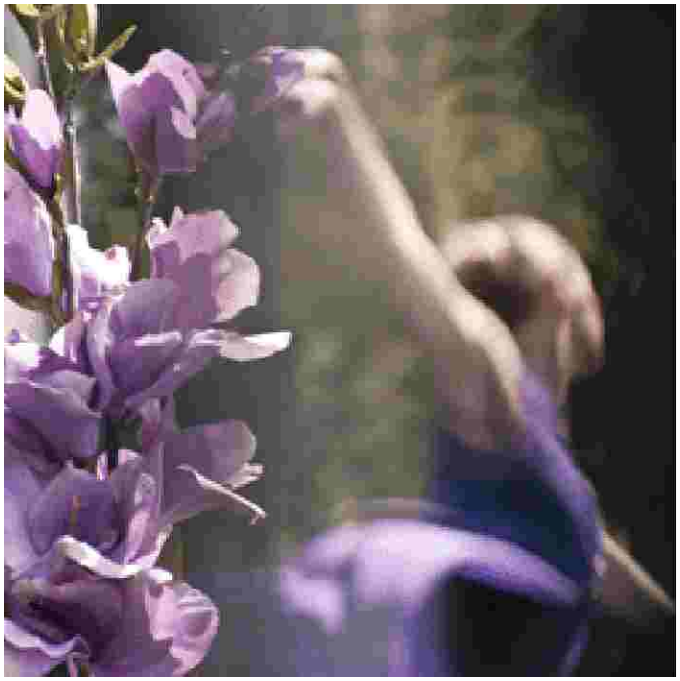

> इस देश के संविधान ने इस देश की आत्मा अर्थात 'हिन्दी' से एक वादा किया था लेकिन ये वादा आज तक पूरा नहीं हो पाया और हिन्दी अपने इस अधिकार के लिए आज तक संविधान के सामने अपने हाथ फैलाये आंसू बहा रही है.

है. इंडोनेशियन में हलो को सेलामतपागी कहा जाता है.

फ्रेंच यानी फ्रांसीसी १२९ मिलियन लोग बोलते हैं. इस लिहाज से यह दुनियां में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में दसवें नंबर पर है. यह फ्रांस के अलावा बेल्जियम, कनाडा, रवांडा, कैमरून और हैती में बोली जाती है. फ्रेंच में हलो को बोनजूर कहते हैं.

वादा आज तक पूरा नहीं हो पाया : 'संविधान के अनुसार २६ जनवरी १९६५ से भारतीय संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी हो गई है और सरकारी कामकाज के लिए हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग होगा.' इस देश के संविधान ने इस देश की आत्मा अर्थात 'हिन्दी' से एक वादा किया था लेकिन ये वादा आज तक पूरा नहीं हो पाया और हिन्दी अपने इस अधिकार के लिए आज तक संविधान के सामने अपने हाथ फैलाये आंसू बहा रही है. क्या वास्तव में हिन्दी इतनी बुरी है कि हम उसे अपनाना नहीं चाहते?

तस्वीर का दूसरा पहलू : आज हिंदी देश को जोड़ने की बजाए विरोध की भाषा बन गई है. राजनीति ने इसे उस मुकाम पर खड़ा कर दिया है जहां अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी विरोध पर ही पूरी राजनीति टिक गई है. पूरे भारत को एक भाषा से जोड़ने की आजाद भारत की कोशिश अब राजनीतिक विरोध के कारण कहने को त्रिभाषा फार्मूले में तब्दील हो गई है मगर अप्रत्क्ष तौर पर सभी जगह हिंदी का विरोध ही दिखता है. इसका सबसे बड़ा उदाहरण तो यही है कि राज्य स्तर पर हिंदी को सर्वमान्य का सम्मान नहीं मिल पाया है. जिस देश में प्राथमिक शिक्षा तक का भी राष्ट्रीयकरण सिर्फ हिंदी को अपनाने के विरोध के कारण नहीं हो पाया तो उस देश की एकता का सूत्र कैसे बन सकती है हिंदी. अब वैश्वीकरण के दौर में कम से कम शिक्षा के स्तर पर अंग्रेजी ज्यादा कामयाब होती दिख रही है. कानूनन हिंदी को सब दर्जा हासिल है मगर व्यवहारिक स्तर पर सिर्फ उपेक्षा ही हिंदी के हाथ लगी है. क्षेत्रीय राजनीति का बोलबाला होने के बाद से तो बोलचाल व शिक्षा सभी के स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं को मिली तरजीह ने एक राष्ट्र-एक भाषा की योजना को धूल में मिला दिया है. अगर हिंदी को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अपनाया नहीं गया तो निश्चित तौर पर इसकी जगह अंग्रेजी ले लेगी और तब क्षेत्रीय भाषाओं के भी वजूद का संकट खड़ा हो जाएगा. अगर हिंदी बचती है तो क्षेत्रीय भाषाओं का भी वजूद बच पाएगा अन्यथा अंग्रेजी इन सभी को निगल जाएगी. और अंग्रेजी ने तो अब शिक्षा और रोजगार के जरिए यह करना शुरू भी कर दिया है.■

डॉ. गौतम सचदेव

अविभाजित पंजाब के वारबर्टन नामक कस्बे में जन्म. दिल्ली वि.वि. से एम.ए., प्रेमचंद के कहानी-शिल्प पर पी.एच.डी., कवि, कहानीकार, व्यंग्यकार, आलोचक एवं प्रसारक के तौर पर ख्याति. १३ किताबें प्रकाशित. जिनमें प्रमुख हैं - साढ़े सात दर्जन पिंजरे, अटका हुआ पानी (कहानी संग्रह), सच्चा झूठ (व्यंग्य संग्रह), अधर का पुल, एक और आत्मसमर्पण, सूरज की पंखुड़ियाँ (कविता संग्रह). दिल्ली वि.वि. में २२ वर्षों तक अध्यापन. बीबीसी में दो दशकों तक प्रोड्यूसर- प्रसारक रहे. केम्ब्रिज वि.वि. में भी हिन्दी साहित्य का अध्यापन किया. डॉ. हरिवंश राय बच्चन सम्मान, पद्मानन्द साहित्य सम्मान और निष्काम सेवी सम्मानों से पुरस्कृत. सम्प्रति : स्वतन्त्र लेखन कर रहे हैं.

सम्पर्क : DrGsachdev@aol.com

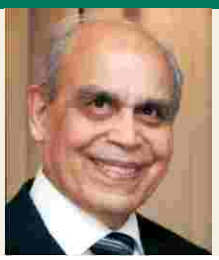

रम्य-रचना

भीगी भागी-सी गरमी

हिन्दी फ़िल्मों की नायिका जैसी है ब्रिटेन की गरमी, चुस्त गीले कपड़ों में भीगती भागती हुई-सी. इधर आई उधर फुर्र से उड़ गई. इसके आने पर प्रसाद जी के आँसू काव्य की यह पंक्ति याद आ जाती है 'शीतल ज्वाला जलती है'. ज्वाला भी है और शीतल भी, है न कमाल की चीज़, बिल्कुल प्रेमी के विरह जैसी या एस्कीमो लोगों के इग्लू में जलती अँगीठी जैसी, जिससे रोशनी तो मिलती है, उष्णता शायद ही मिले. हिन्दी फ़िल्मों का निदेशक तो नायिका की रूपज्वाला को उत्तेजक और मादक बनाने के लिये उसे किसी देशी-विदेशी या असली-नक़ली झरने वग़ैरह के नीचे ले जाता है, लेकिन ब्रिटेन की गरमी को यह कष्ट देने की कोई ज़रूरत नहीं है. उस पर प्रकृति की बड़ी कृपा है, जिसने उसे चारों ओर ठाठें मारता समुद्र प्रदान किया है और जिसमें वह जब चाहे जाकर डुबकी लगा आती है. तभी तो वह गीली आती है, गीली रहती है और गीली ही बाय-बाय कर देती है. उसके भीगे बदन को देखकर मुझे हरिद्वार की अपनी बरसों पहले की वह यात्रा याद आ जाती है, जब मैं दोस्तों के साथ पीलीभीत हाउस नामक किराये की एक कोठी में ठहरा था. कोठी के पीछे हरहराती हुई गंगा थी और उसमें नहाने के लिये आँगन के अन्तिम छोर पर सीढ़ियाँ बनी हुई थीं. हम दिन में जब जी करता, कपड़े पहने-पहने ही उतर कर डुबकी लगा लेते. न घाटों पर जाने का कष्ट उठाना पड़ता था, न भीड़-भड़क्के में घाट पर नहाने की जगह ढूँढ़ने का और न ही पंडों के पास घड़ी-बटुआ वग़ैरह क़ीमती चीज़ों को अमानत में रखवाने का.

ब्रिटेन की गरमी यों तो बड़ी सहनशील है और शीतल ज्वाला का ठप्पा लगवाकर भी मानहानि का दावा ठोकने के लिये भड़कती नहीं. लेकिन है तो गरमी ही, सो साल में दो-चार दिन तप जाती है और अपना जोबन दिखाने लगती है. आख़िर जोबन और होता किस लिये है? प्रदर्शन के लिये ही तो. ख़ैर, सच क्या है, बताना मुश्किल है, लेकिन इतना ज़रूर

> *हिन्दी फ़िल्मों का निदेशक तो नायिका की रूपज्वाला को उत्तेजक और मादक बनाने के लिये उसे किसी देशी-विदेशी या असली-नक़ली झरने वग़ैरह के नीचे ले जाता है, लेकिन ब्रिटेन की गरमी को यह कष्ट देने की कोई ज़रूरत नहीं है.*

कह सकते हैं कि वह याद दिलाती है, भई या तो फ़ौरन पंखा ख़रीद लाओ या उसे लॉफ़्ट (छत के ऊपर की स्टोर नुमा जगह) वग़ैरह के उस कोने से निकाल कर थोड़ी हवा ले लो,

जिसमें आपने उसे फेंक रखा है, वर्ना बाद में न कहना. उसका यह जोबन-प्रदर्शन आँख मिचोली से कम नहीं होता. इधर आप पंखे को झाड़-पोंछकर चलाने की तैयारी करते हैं, उधर वह गधे के सिर से सींगों की तरह ग़ायब हो जाती है. फिर ज्योंही आप पंखे को दुबारा सँभालने या चैरिटी को दान में देने का काम करने वाले होते हैं, त्योंही वह खिलखिलाती हुई प्रकट हो जाती है. मैंने जो पंखा ख़रीद रखा है, उसे निकालने और सँभालने में इसी वजह से मैं काफ़ी समय लगाता हूँ और इस ज़रा से काम के लिये बड़ी मेहनत करता हूँ, लेकिन मेरी पत्नी को इससे चिढ़ होती है. वह किसी भी काम में देरी लगाना पसंद नहीं करती.

ब्रिटेन की गरमी वैसी नहीं होती, जैसी भारत के कई शहरों की धधकती हुई गरमी होती है. भारत की गरमी तो साक्षात् पौराणिक राक्षसी ही बन जाती है और मुँह से लू और लपटें छोड़ने लगती है. उसका बदन भी इतना तप जाता है कि एक ओर आप त्राहि-त्राहि करते हैं और दूसरी ओर 'बीड़ी जलाइ ले पिया' पुकारने लगते हैं.

ब्रिटेन की गरमी की एक और विशेषता है कि इसकी धूप गोरे-गोरियों को नंगा होने के लिये उकसाती है, लेकिन आप कपड़े पहने रखती है. बादलों के परिधान में यह सचमुच 'नील परिधान बीच सुकुमार मृदुल अघखुले अंग' वाली होती है. प्रसाद जी चाहे स्वयं कभी ब्रिटेन नहीं आये थे, लेकिन उन्होंने अपनी श्रद्धा के गुलाबी सौन्दर्य के लिये मेघों में खिले बिजली के फूल की बिल्कुल सही कल्पना की है. बचपन में जब हम धूप के साथ बूँदा-बाँदी होती देखते थे, तो पंजाबी में यह कहकर तालियाँ बजाते और नाचते थे 'गिद्दड़-गिद्दड़ी दा ब्याह, नाले धुप्प नाले छाँ (गीदड़ और गीदड़ी का ब्याह हो रहा है, धूप भी निकली है और छाया भी है).

इस गरमी को आप आसानी से छत्रपति (शुद्धता की दृष्टि से छत्रपत्नी ?) कह सकते हैं, क्योंकि इसपर बादलों का छाता हर समय तना रहता है. लेकिन यह अकेली ही छत्रपति नहीं बनती, ब्रिटेनवासियों को भी छत्रपति कहलाने का गौरव प्रदान करती है, क्योंकि उन्हें छाता लेकर ही घर से निकलना पड़ता है. वैसे छाता लेकर चलना है बड़े झंझट का काम, लेकिन क्या करें, करना पड़ता है. कितने ही लोगों का छाता अक्सर बसों और गाड़ियों में छूट जाता है (मेरा भी छूटा था, जो बहुत सुन्दर और बड़ा कीमती था और जो मेरी पत्नी ने मुझे मेरे जन्मदिन पर उपहार में दिया था), लेकिन मेरी तरह यहाँ के लोग उसे बसों और गाड़ियों में मिल जाने वाले सामान के उन लॉस्ट एंड फ़ाउंड केन्द्रों में ढूँढ़ने और लेने नहीं जाते, जहाँ हर साल अन्य चीज़ों के अलावा लाखों छाते जमा हो जाते हैं और अधिकारियों को उनकी नीलामी करनी पड़ती है.

यूँ तो भारतीयों को गोरा रंग बहुत पसंद है और वे गोरा होने के लिये बहुत कुछ करते हैं, लेकिन ऐसा नहीं कि उन्हें श्याम रंग बिल्कुल अच्छा नहीं लगता. उन्होंने अपने इष्ट देवी-देवताओं को दोनों रंग दिये हैं. अगर गौरी, सीता और लक्ष्मण गोरे रंग के हैं, तो राम और कृष्ण साँवले रंग के हैं. इन दोनों रंगों की सुन्दरता पर भी वे, पंजाबी में कहूँ तो 'वारी-वारी जाते हैं' और तुलसीदास के शब्दों में कहूँ तो 'स्याम गौर किमि जायँ बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी' का पाठ करते हैं. यह होने पर भी पूरी सचाई यह है कि भारतीयों को साँवला नहीं, गोरा रंग ही प्रिय है. कई पीढ़ियों पहले की भारतीय छोरियों को याद कीजिये. कितने उत्साह से वे 'गोरे-गोरे ओ बाँके छोरे कभी मेरी गली आया करो' गा-गाकर गोरों से आँखें लड़ाने का शौक पूरा किया करती थीं. नई पीढ़ी की आधुनिक छोरियाँ उनसे हज़ारों क़दम आगे निकल गई हैं. वे गोरी बनने की क्रीमें मलती हैं और ब्यूटी ट्रीटमेंट कराती हैं. उन्हें मेरी माँ की इस धारणा पर भी यक़ीन नहीं कि सौ मन साबुन मलने पर भी काले गोरे नहीं हो सकते (पंजाबी की कहावत है 'काले मूल न हुंदे बग्गे, भावें सौ मन साबन लग्गे'. विदेशों में भारी संख्या में भारतीय रहते हैं, जिन्हें देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है कि अच्छा है, अपने लोग कितने सम्पन्न और सुखी हैं. वैसे उनको देखकर कभी-कभी मुझे यह भी लगता है कि वे इस कारण विदेशों में जा बसे हैं, ताकि उनकी भावी सन्तानों के गोरी होने के चाँस बढ़ जायें.

ब्रिटेन में रहने वाले किसी भारतीय से कभी भूलकर भी यह मत पूछिये कि क्या वह अपनी लड़की के लिये कोई काला अफ़्रीकी लड़का पसंद करेगा? ऐसा पूछते ही आप उसके दुश्मन हो जायेंगे. लेकिन इन प्रवासी भारतीयों की मुसीबत यह है कि उनमें से कितनों की लड़कियाँ काले लड़कों से प्रेम करने चल पड़ती हैं और उनसे ही शादी करने की ज़िद पकड़ लेती हैं. मैं एक ऐसे परिवार को जानता हूँ, जिसकी लड़की ने न केवल एक काले अफ़्रीकी लड़के से प्रेम ही किया, बल्कि उससे शादी करने का ऐलान भी कर डाला. बस, घर में तूफ़ान उठ खड़ा हुआ. चूँकि वह लड़की तूफ़ानों से खेलने और घर

> *भारतीयों को साँवला नहीं, गोरा रंग ही प्रिय है. कई पीढ़ियों पहले की भारतीय छोरियों को याद कीजिये. कितने उत्साह से वे 'गोरे-गोरे ओ बाँके छोरे कभी मेरी गली आया करो' गा-गाकर गोरों से आँखें लड़ाने का शौक पूरा किया करती थीं.*

> ब्रिटेन की गरमी चाहे धौरी हो या कजरी, आँधी-पानी में हमेशा ठिठुरती रहती है. बेचारी ने अभी अपने बदन और हड्डियों में समाई सर्दी और सीलन को सुखाया भी नहीं होता कि मौसम बदल जाता है और दिन सिकुड़ने लगते हैं.

वालों को तूफ़ानों में धकेलने में कोई हर्ज नहीं समझती थी, इसलिये वह नहीं मानी. आख़िर माता-पिता रो-धोकर अपने अनचाहे और बिना कुछ दिये-लिये बन जाने वाले जमाई की तारीफ़ करने और उसे बेटा-बेटा कहने का फ़र्ज़ पूरा करने लगे. ब्याह के बरसों बाद फिर न जाने क्या हुआ. पता नहीं, भगवान ने माता-पिता की प्रार्थना सुन ली या लड़की ने उनकी लाज रख ली, उसके कोई सन्तान नहीं हुई. माता-पिता ने निर्द्वन्द्व भाव से प्रकट रूप में सहानुभूति जताते हुए यह कहा कि चलो, यही भगवान की इच्छा होगी, लेकिन अन्दर ही अन्दर बड़े ख़ुश हुए कि चलो जमाई काला मिला, कम-से-कम नाती-नातिन तो काले नहीं होंगे.

काले रंग से इस नफ़रत के बावजूद इन भारतीयों की कितनी मुसीबत है कि वे ब्रिटेन जैसे देश में आ बसे हैं, जहाँ की सर्दी-गरमी साल में सात-आठ महीने न केवल कजरी रहती है, बल्कि अंग्रेज़ी की प्रचलित उक्ति के अनुसार 'ऑल्वेज़ अंडर द वैदर' (हमेशा मौसम का शिकार) भी होती है.

ब्रितानी गोरों की नस्लपरस्ती बड़ी बदनाम है, लेकिन सरकार द्वारा इसके ग़ैर क़ानूनी बना दिये जाने के बावजूद वे बड़े आराम से भूरी और काली नस्लों से घृणा करते रहते हैं. गरमी आने पर ज्योंही वे कपड़े उतारकर बाग़-बगीचों में पसरते हैं, त्योंही ऐसा महसूस होता है, मानो वे भूरी और काली नस्लों को जला रहे हैं और कह रहे हैं कि देखो, तुमने हमारे सामाजिक कल्याण वाले 'वेल्फ़ेयर स्टेट' की सुख-सुविधाएँ भले ही मार ली हैं, लेकिन तुम्हें हमारे जैसा गोरा रंग कभी नसीब नहीं होगा.

ब्रिटेन की गरमी चाहे धौरी हो या कजरी, आँधी-पानी में हमेशा ठिठुरती रहती है. बेचारी ने अभी अपने बदन और हड्डियों में समाई सर्दी और सीलन को सुखाया भी नहीं होता कि मौसम बदल जाता है और दिन सिकुड़ने लगते हैं. ऊपर से टाइम भी बदल जाता है और साढ़े तीन बजते न बजते अँधेरा होने लगता है. बेचारी आधी बाँह की कमीज़ों, टी-शर्टों और हाफ़ पैंटों को हाथ-पाँव भी सीधे नहीं करने दिये जाते और बिना उनके किसी अपराध के उन्हें फिर से अलमारियों में क़ैद बामुशक्कत दे दी जाती है. वैसे अंग्रेज़ उन्हें चैरिटीज़ को दान करना बेहतर समझते हैं. ख़ैर, कपड़ों के कारावस को बाद में रोयेंगे, पहले ज़रा इस मौसम की दुर्लभ मिठास को चख लें और भारत-पाकिस्तान से आये एल्फ़ौंसो, केसर, चौसा, सिंदड़ी और रतौल नामक आमों की नस्लों का आनन्द उठा लें. चूँकि यह गरमी कमल के पत्तों पर गिरी बूँदों की तरह पल में ढुलक जाने और जीवन की क्षणभंगुरता की याद दिलाने वाली है, इस लिये मकान की मरम्मत और रँगाई-पुताई भी कर-करा लें. कल अगर बिना किसी पूर्व सूचना के अपने भारतीय रिश्तेदार आ गये, जो भारत की गरमी से त्रस्त होकर आएँगे ही, तब कहीं वे ये न समझ बैठें कि हमारे ब्रिटेन वाले रिश्तेदारों का रहन-सहन और स्टैंडर्ड हमसे कितना हल्का है.

मैं जब लंदन आया था, तो बीबीसी की मेरी एक सहकर्मिणी ने चेतावनी दी थी कि शरीर में विटामिन डी की कभी कमी नहीं होने देना और धूप ज़रूर सेंकते रहना. वहाँ भारत में भले ही तुम धूप से घबराते और उसके प्रकोप से बचते रहे होगे, लेकिन यहाँ ऐसा नहीं करना, नहीं तो शरीर में विटामिन डी की कमी हो जायेगी और उसकी गोलियाँ खानी पड़ेंगी या उसके टीके लगवाने पड़ेंगे. मैंने उसकी सलाह का पूरा पालन तो नहीं किया (और मेरी पत्नी ने तो क़तई नहीं किया), लेकिन यदा-कदा धूप ज़रूर सोख लेता हूँ.

कैसी विचित्र बात है कि भारतीय तो गोरा होने के लिये तरसते हैं, लेकिन गोरे अपनी चमड़ी को गोरी नहीं देखना चाहते और उसे भूरा यानि टैन कराने का पूरा-पूरा उद्योग करते हैं. इसके लिये चूँकि उनके अपने देश का सूर्य और आकाश उनपर बहुत कम मेहरबानी करते हैं, इसलिये वे स्पेन, पुर्तगाल या भूमध्य सागर के धुपहले देशों की ओर भागते हैं और सॉना एवं लोशनों वग़ैरह का जमकर प्रयोग करते हैं. उनके ठीक विपरीत भारतीय न केवल अपने भूरे रंग को मिटवाना चाहते हैं, बल्कि अपने गोरे पीले सोने तक को सफ़ेद यानि व्हाइट गोल्ड बनवाने के लिये सुनारों द्वारा ठगे जाना पसंद करते हैं.

ब्रिटेन की गरमी के बारे में मेरे विचार बड़े स्वस्थ हैं, क्योंकि इसके आने पर मकानों का स्वास्थ्य सुधर जाता है. लोग रँगाई-पुताई करने या कराने लगते हैं, बाग़बानी में जुट जाते हैं और सवेरे की सैर को महत्त्व देने लगते हैं. यही नहीं, चूँकि सर्दियों में घरों की हीटिंग में बंद रहने के कारण उन्हें त्वचा के रोग होने लगते हैं, इसलिये वे हीटिंग को बंद करके शुक्र मनाते हैं. ज़ाहिर है इससे ईंधन की बचत तो होती ही है, भारत लौट जाने की तलब भी कम हो जाती है.■

अजन्ता शर्मा

कंप्यूटर साइंस में स्नातकोत्तर. साहित्य के अतिरिक्त गायन व चित्रकला में रुचि. कविताएँ देश-विदेश के विभिन्न समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, जालघरों एवं रेडियो प्रसारित. ब्लॉग http://ajantasharma.blogspot.com लिखती हैं. संप्रति : प्रबंधक (इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी)

सम्पर्क : sharma_ajanta@yahoo.com

विचार

प्रवासी कथा साहित्य में स्त्री जीवन

विगत कुछ वर्षों में प्रवासी साहित्यकारों द्वारा हिन्दी साहित्य सृजन बहुत तेजी से उभर कर आया है. जिसमें साहित्य की दो प्रमुख विधाओं कहानी और कविताओं की प्रचुरता देखने में आती है. चूँकि प्रवासी हिन्दी साहित्य अपेक्षाकृत नया है इसलिए उसकी तुलना अति समृद्ध भारतीय हिन्दी साहित्य से किया जाना एक तरह से ज्यादती होगी. फिर भी इतनी दूर हिन्दी-साहित्य के सृजन का प्रयत्न जारी है यह हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में एक महत्वपूर्ण योगदान अवश्य है.

आज प्रवासी कहानीकारों द्वारा बहुतायत में कहानियां लिखी जा रही हैं जिनका मुख्य विषय प्रवासी जीवन होता है. उन कहानियों में नारी का जो स्वरूप उभरता दिखाई देता है वह पूर्व स्थापित भारतीय नारी के स्वरूप से बिल्कुल ही भिन्न,

> *"प्रवासी कहानियों में नारी का स्वरूप भिन्न तो अवश्य दिखता है किन्तु उनकी परेशानियाँ और शोषण ज्यों का त्यों है. पूर्व समाज में नारी घर की ड्योढी में बँधी छटपटाती थी आज ड्योढी से बाहर निकलने की स्वतन्त्रता तो प्राप्त कर ली है लेकिन शोषण से मुक्ति को छटपटाती है."*

एक नया आकार लिए हुए है. बहुत हद तक प्रवासियों की वास्तविक स्थिति और स्वरूप का प्रतिबिम्ब दिखता है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि कहानियों के पात्र प्रवासी समाज के ही प्रतिनिधि होते हैं.

आज प्रवासी नारी दोहरे-तिहरे मोर्चों पर संघर्षरत दिखाई देती है. एक तरफ पिछले बन्धनों से मुक्त होकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने का संघर्ष. अपनी सत्ता स्थापित करने का संघर्ष. दूसरी तरफ पूर्व स्थापित और नवीन पाश्चात्य मूल्यों के बीच तारतम्य बिठाने का संघर्ष. तीसरी तरफ स्वतन्त्रता और स्वच्छंदता के बीच की सिमटती दूरी को बचाए रखने का संघर्ष. परिवर्तन की प्रक्रिया में जन्मे मानसिक उहापोह पूरी तरह से कहानियों में उभर कर आते है. यदि बेबाक ढंग से कहूँ तो स्थिति कुछ वैसी दिखाई देती है जैसे विदेशी प्लेटों में भारतीय व्यंजनों की स्थिति होती है. सब आपस में गड्डम-गड्ड. एक अनिर्णय की स्थिति. हम किसी भी

नवीन संस्कृति को तब तक पूरी तरह आत्मसात नहीं कर सकते हैं जब तक पूर्व संस्कृति को पूरी तरह छोड़ नहीं देते. और ऐसा करना आसान नहीं होता है.

इला प्रसाद की कहानी *सेल* के पात्रों के अन्दर एक तरफ पश्चिम के बाज़ारवाद और स्वच्छंद दैहिक सुखों की लालसा दिखाई देती है तो दूसरी तरफ स्थायित्व की कामना. और यह स्थिति उहापोह की स्थिति को जन्म देती है. अनिल प्रभा कुमार की कहानी *उसका इंतज़ार* में एक भारतीय किशोरी एक तरफ तो अंग्रेज लड़के के लम्बे-चौड़े आकर्षक डील-डौल और सुन्दर मुखाकृति से आकर्षित होती है और जीवन साथी के रूप में उसे पाना चाहती है, दूसरी तरफ सम्बन्ध-विच्छेद को सहजता से स्वीकार नहीं कर पाती है. तेजेंद्र शर्मा की *एक बार फिर होली* की तरह कई कहानियों में भारतीय परिवेश से आई नयी ब्याहता को एक तरफ भौतिक सुख सुविधाएँ और आर्थिक समृद्धता आकर्षित करती हैं तो दूसरी तरफ भावनात्मक स्तर पर एकाकीपन सालता है.

अपने रीति-रिवाजों का पालन और बहिष्कार प्रवासी कहानियों एक प्रमुख विषय रहा है. सबसे मुख्य समस्या प्रस्तुत होती है उसकी हद को निर्धारित करना. परिवार के सदस्यों के भिन्न-भिन्न विचार प्रायः टकराव की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं. समस्या और विकट तब हो जाती है जब नई पीढ़ी जो वहाँ पश्चिमी संस्कृति में जन्म लेती है, उनके बीच पलती बढ़ती है उसकी सोच अपने ही माता-पिता के विपरीत होने लगती है. वे पिछली मान्यताओं और रीति-रिवाजों की बिल्कुल भी परवाह नहीं करते हैं. जैसा कि भारतीय समाज में शुरू से स्थिति यह रही है कि लड़कों के द्वारा मान्यताओं के अतिक्रमण को बहुत गंभीर नहीं माना जाता है किन्तु लड़कियों के द्वारा किसी भी मान्यता का अतिक्रमण करना जघन्य पाप के अंतर्गत आता है. तेजेंद्र शर्मा की कहानी *कल फिर आना* में ठीक वैसा ही परिलक्षित होता है. इसलिए प्रायः विषम स्थितियों के केंद्र बिंदु में लड़कियाँ और स्त्रियाँ ही होती हैं.

प्रवासी नारी-जीवन के लगभग सभी पक्षों पर कहानियाँ लिखी जा रही हैं. उनकी प्रगति, उनकी उपलब्धि, उनका अंतर्द्वंद्व, उनका शोषण सभी कुछ कहानियों के विषय वस्तु में समाहित किए जा रहे हैं. उनके जीवन में जो कुछ भी अशोभनीय है, कटु है, दर्दनाक है, उसे लेकर वे पलायनवादी नहीं हैं. अपनी त्रासदियों को संबंधों के बीच, परिवार के बीच, नहीं आने देना चाहती. तेजेंद्र शर्मा की *एक बार फिर होली* की नायिका 'बाबुल मोरा नैहर छुटो जाय' से उबर नहीं पाती, वहीं उषा प्रियंवदा की *अंतर्वंशी* की वनश्री दाम्पत्य जीवन की प्रतिकूलताओं, अपने संबंधों व संघर्षों के सिलसिले को विश्लेषित करती 'वाना' बन जाती है. वह विशुद्ध भारतीय मानसिकता की होकर भी अपरिचित मिट्टी और संस्कृति से जुड़ना चाहती है. जैसे एक मायके के बाद दूसरा ससुराल! एक ओर जहाँ उषा राजे सक्सेना की *अलोरा* यौन शोषण जैसी सर्वकालिक घटना की शिकार है, वहीं तेजेंद्र शर्मा की *कल फिर आना* की नायिका अपनी दैहिक इच्छापूर्ति के लिए पूरी तरह उद्दत है.

प्रवासी कहानियों में नारी का स्वरूप भिन्न तो अवश्य दिखता है किन्तु उनकी परेशानियाँ और शोषण ज्यों का त्यों है. पूर्व समाज में नारी घर की ड्योढी में बँधी छटपटाती थी आज ड्योढी से बाहर निकलने की स्वतन्त्रता तो प्राप्त कर ली है लेकिन शोषण से मुक्ति को छटपटाती है. आठ घंटे नौकरी करके घर लौटने पर घर का सारा काम उसी की प्रतीक्षा में रहता है. पुरुषों द्वारा शोषण की प्रक्रिया सतत जारी है. कभी शारीरिक शोषण तो कभी भावनात्मक शोषण. कुल मिलाकर प्रवासी कहानियों में स्त्री की जो स्थिति दिखाई देती है वह बहुत संतोषजनक नहीं है, असुरक्षा और शोषण से अभी भी मुक्ति नहीं दिखाई देती है. हाँ आर्थिक स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत पहचान में अवश्य वृद्धि हुई है जो सुखद स्थिति है.■

दीपक चौरसिया 'मशाल'
२४ सितम्बर १९८० को कौंच, उरई, उत्तरप्रदेश में जन्म.
सम्प्रति : उत्तरी आयरलैंड (यू.के.) के क्वींस विश्वविद्यालय से कैंसर पर शोध में संलग्न.
सम्पर्क : mashal.com@gmail.com
ब्लॉग http:swarnimpal.blogspot.com

लघुकथा
अनहोनी

बड़ी अनहोनी हो गई. नेता जी को हमलावरों ने घायल कर दिया. सुना है वो सुबह-सुबह मंदिर जा रहे थे लेकिन रास्ते में ही मोटरसाइकिल सवार दो अज्ञात हमलावरों ने अचानक उन पर ताबड़तोड़ गोलियां बरसा दीं. उनके बहते खून ने समर्थकों का खून खौला दिया. देखते ही देखते उनके चाहने वालों का हुजूम जमा हो गया.

थोड़ी देर में ही नेता ऑपरेशन थियेटर में थे और बाहर समर्थकों के सब्र का बाँध टूट रहा था. किसी ने कहा- 'इस सब में पुलिस की मिलीभगत है.'

फिर क्या था. लोगों की भीड़ थाने की तरफ बढ़ चली. लाठी, बल्लम, हॉकी स्टिक, मिट्टी का तेल, पेट्रोल सब जाने कहाँ से प्रकट होते चले गए. रास्ते में जो भी वाहन मिलता उसमें आग लगा दी जाती. दुकानें बंद करा दी गयीं. जो नहीं हुईं वो लूट ली गईं.

इस सबसे बेखबर वो आज भी थाने के पास वाले चौराहे पर अपना रिक्शा लिए खड़ा था, जो उसके पास तो था पर उसका नहीं था. हाँ किराए पर रिक्शा लिया था उसने. आज साप्ताहिक बाज़ार का दिन था, उसे उम्मीद थी कि कम से कम आज तो रिक्शे के किराए के अलावा कुछ पैसे बचेंगे जिससे उसके तीनों बच्चे भर पेट खाना खा सकेंगे और कुछ और बच गए तो बुखार में तपती बीवी को दवा भी ला देगा.

दूर से आती भीड़ को उसने देखा तो लेकिन उसके मूड का अंदाजा ना लगा पाया. या शायद सोचा होगा कि उस गरीब से उनकी क्या दुश्मनी? पर जब तक वो कुछ समझ सकता रिक्शा पेट्रोल से भीग चुका था. एक जलती तीली ने पल भर में बच्चों के निवाले और उसकी बीवी की दवा जला डाली.

अगले दिन नेता जी की हालत खतरे से बाहर थी. हमलावर पकड़े गए. नेता जी ने समर्थकों का उनके प्रति अगाध प्रेम दर्शाने के लिए आभार प्रकट किया.

रिक्शावाले के घर का दरवाज़ा सूरज के आसमान चढ़ने तक नहीं खुला. अनहोनी की आशंका से पड़ोसियों ने अभी-अभी पुलिस को फोन किया है.■

कौशलेन्द्र प्रपन्न

शिक्षा : एमए हिंदी और संस्कृत, हिंदी पत्रकारिता में दो वर्षीय पीजी डिप्लोमा, दिल्ली विश्वविद्यालय से बीएड, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से एमएलआइएस और योग में एक वर्षीय डिप्लोमा. ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली से विभिन्न लाइव एवं साक्षात्कार, परिचर्चा, बजट टॉक आदि प्रसारित. विभिन्न अखबारों में समीक्षाएं, शिक्षा एवं बजट पर विशेष आलेख प्रकाशित. स्कूलों में अध्यापन एवं इक्नामिक टाइम्स में बतौर कॉपी एडिटर कार्य किया. बाल कहानियां लिखने एवं बच्चों के बीच जाकर सुनाने में रुचि.

सम्पर्क : ६/५४, डबल स्टोरी विजय नगर, संत कृपाल आश्रम के पास, दिल्ली. ईमेल : k.prapanna@gmail.com

व्याख्या

मृत्यु उत्सव

कबीर से कैलाशा तक

मृत्यु को उत्सव के रूप में मनाने के लिए इंसान को न केवल माया-मोह को समझने की क्षमता चाहिए बल्कि अपनी पंचेंद्रियों और कर्मेंद्रियों पर नियंत्रण होना चाहिए. हिंदी साहित्य के इतिहास में झांकें तो भक्ति-काल में विभिन्न धाराओं का निदर्शन मिलता है. जहां भक्ति की निर्गुण और सगुण धारा की चर्चा मिलती है. जहां हमें मत्स्येंद्रनाथ, जलंधरनाथ और गोरखनाथ की साधना परंपरा भी मिलती है. वैसे ही हमें एक निरंजनी संप्रदाय की जानकारी भी मिलती है. इस संप्रदाय में मौत को उत्सव के रूप में मनाया जाता है. मृत्यु के बाद आत्मा की विदाई को कुछ इस रूप की में की जाती है कि जैसे बहुरिया मैके से ससुराल जाती है. कि जैसे पत्नी अपने पति से मिलने चली गई. यहां मौत को समस्त बंधों से छुटकारा मिलना माना गया है. पातंजलयोग दर्शन में जिसे तूरीय अवस्था कहा गया है. जिस प्रकार सूफी संप्रदाय में परमात्मा को प्रिय और खुद को उसकी प्रेमिका के रूप में वर्णन मिलता है. पी पी की पुकार ख़ासकर सूफी और निरंजनी संप्रदाय में सुना जा सकता है. इसीलिए मृत्यु को

> *मुक्ति दो प्रकार की मानी गई है. पहला, विदेह और दूसरा भौतिक. राजा जनक विदेह जनक के नाम से भी जाने जाते हैं. क्योंकि वो गृहस्थ होते हुए भी बैराग्य रस में निमग्न थे. बौद्ध, जैन और चार्वाक् दर्शन न तो ईश्वरीय सत्ता में विश्वास करता है और न पुनर्जन्म एवं कर्मफल सिद्धांतों में ही आस्था रखता है.*

भारतीय षोड़श संस्कारों में अंतिम संस्कार के रूप जोड़ा गया है. जिसको अंत्येष्टि संस्कार के नाम से जानते हैं. हरेक संप्रदाय एवं धर्मों में अंतिम संस्कार की विधियां अलग-अलग हैं. मुखाग्नि से लेकर दफ्नाने, जल-समाधि जो साधु-संतों को दी जाती है. खुले स्थान में लाश को छोड़ देना, ताकि अन्य जीव-जंतु खाकर अपनी भूख मिटा सकें.

इंसान सबसे ज्यादा किसी से डरता है तो वह मृत्यु है. संभवतः संसार में मौत को भयावह, दर्दीला, अपूर्णणीय क्षति और एक सर्वव्यापक सत्ता की मर्जी आदि के रूप में लिखा-पढ़ा और कहा-सुना गया है. विभिन्न धार्मिक व साम्प्रदायिक शास्त्रों में वर्णित मृत्यु प्रसंगों पर विचार करें तो पाएंगे कि शब्द, बिम्ब और संदर्भ बेशक अलग-अलग होंगे, लेकिन मृत्यु को ठीक वैसे ही बताया गया है जैसे जन्म. जिस तरह व्यक्ति का जन्म होता है उसकी प्रकार मृत्यु भी तय होती है. जब

जन्म प्रकृति की स्वाभाविक घटना व रचना है ठीक उसी तरह से मृत्यु भी एक घटना व प्रकृति की क्रीड़ा मात्र है. वेद में हम पाते हैं कि जो इन नस- नाड़ियों के बंधन से मुक्त हो जाते हैं वो मोक्ष, कैवल्य, जीवन-मरण के चक्र से छूट जाते हैं. 'अजो नित्यः शाश्वतोयम् न जायते मृत्ये वा'. वहीं पातंजल योग-दर्शन में कहा गया है कि त्रयोगुण 'सत्व्, रज और तमो गुण' का शांत हो जाना वास्तव में देह मुक्ति है. वहीं दैहिक, दैविक, भौतिक आदि आधिदैविक एवं आधि भौतिक आदि तापों से छुटकारा ही मृत्यु है. भारतीय षड्-दर्शन 'न्याय, वैशेशिक, सांख्य, पातंजलयोग, पूर्वमीमांसा एवं उत्तर मीमांसा जिसे वेदांत के नाम भी जाना जाता है.' इसके अलावा भारतीय आस्तिक दर्शन जहां ईश्वरीय सत्ता में आस्था रखते हैं और मानते हैं कि ईश्वर को छोड़कर समस्त चराचर मरणशील प्राणि है. एक मात्र ईश्वर ही ऐसा है जो जन्म-मृत्यु की अंतहीन कड़ी में नहीं बंध पाता. दूसरा नास्तिक दर्शन जिसकी स्थापना ईश्वरीय सत्ता को नकारती है. बौद्ध, जैन और चार्वाक् दर्शन के साथ ही वैशेषिक, न्याय दर्शन भी ईश्वरीय शक्ति को प्रकृति की कर्ता भाव को स्वीकारते हैं.

मुक्ति दो प्रकार की मानी गई है. पहला, विदेह और दूसरा भौतिक. राजा जनक विदेह जनक के नाम से भी जाने जाते हैं. क्योंकि वो गृहस्थ होते हुए भी बैराग्य रस में निमग्न थे. बौद्ध, जैन और चार्वाक् दर्शन न तो ईश्वरीय सत्ता में विश्वास करता है और न पुनर्जन्म एवं कर्मफल सिद्धांतों में ही आस्था रखता है. इन दर्शनों का मानना है कि जीव-जगत् सब क्षण भंगुर हैं. पल-पल जन्मते और मरते हैं. इसलिए न तो पुनर्जन्म की संभावना बनती है और न कर्मफल ही भोगना पड़ता है. मनुष्य को अपने कर्मों और आचरणों के अनुरूप इसी जन्म में परिणाम भोगना पड़ता है. हमारे सदासद् कर्मों का फल इसी जन्म में मिल जाता है. हालांकि इस मुद्दे पर मतैक्य नहीं है. हर दर्शन, शास्त्र, आर्षग्रंथ, धर्म-ग्रंथ और अन्य मतावलंबियों के शास्त्रों में जन्म-मृत्यु को तो स्वीकारा गया है, लेकिन, 'ईश्वरीय सत्ता पर मुंड़े-मुंड़े मतैक भिन्नाः'. जितने भी संप्रदाय व धर्म हैं उन सब का ईश्वर की उपस्थिति और उनकी सर्वव्यापकता को लेकर विभिन्न मान्यताएं हैं. सवाल तो उस सत्ता के ऐक्य व एक से ज्यादा होने की है तो इस पर वेद मानता है मानता है, 'एकोसद्विप्राः बहुदा वदंति' वह तत्व एक है किंतु विद्वान लोग बहुत मानते हैं.

मृत्यु का तात्पर्य भौतिक शरीर का त्याग करना है. यह भौतिक शरीर पांच तत्वों से निर्मित माना गया है. आकाश, जल, वायु, पृथ्वी और अग्नि. इन पांच तत्वों के समानुपातिक रूप से एक होना समस्त जीव-प्राणियों का जन्म माना जाता है. और इनका हमारे शरीर से निकल जाना मृत्यु. वहीं विज्ञानवादियों की मानें तो जीव-प्राणियों चराचर की उत्पत्ति एवं मौत यह एक अणु-परमाणु एवं सेल्स का मरना है. गीता की महत्ता इसलिए है कि यह मात्र आध्यात्म की राह पर

मृत्यु का तात्पर्य भौतिक शरीर का त्याग करना है. यह भौतिक शरीर पांच तत्वों से निर्मित माना गया है. आकाश, जल, वायु, पृथ्वी और अग्नि. इन पांच तत्वों के समानुपातिक रूप से एक होना समस्त जीव-प्राणियों का जन्म माना जाता है. और इनका हमारे शरीर से निकल जाना मृत्यु.

चलने के इच्छुक व्यक्ति को न केवल मार्ग दिखाता है, बल्कि वह कर्मशील व्यक्ति को कर्म में कर्मफल की इच्छा से मुक्त हो कर्म में रत होना भी सिखाता है. गीता की मानें तो हमारी आत्मा अनश्वर, अग्नि, वायु, जलादि के प्रभावों से परे है. इस आत्मा को भौतिक देह को जीवित रखने के लिए भोजनादि की आवश्यकता नहीं पड़ती. इसलिए इसे भी अनादि, अनंत, निराकार, अजन्मा एवं रागद्वैषादि प्राकृतिक स्वभावों से विलग माना गया है. इस दृष्टि से गीता एवं अन्य भारतीय आस्तिक दर्शनों की मानें तो आत्मा और परमात्मा दो अलग-अलग सत्ता है. आत्मा, क्योंकि शरीर धारण करती है. क्षणभंगुर इस लोक के कर्मों में लिप्त रहता है, इसलिए उस आत्मा को प्राकृतिक धर्म प्रभावित करते हैं. किंतु गौरतलब बात यह है कि इहलौकिक जीवन-मरण और अन्य गतिविधियों में सीधे तौर से आत्म का व्यापार नहीं होता. बल्कि आत्मा को धारण करने वाला शरीर कर्म में लिप्त होता है. साथ ही कष्ट, पीड़ा, दर्द और पश्चाताप् आदि अनुभव शरीर को होते हैं. क्योंकि वह इन्हीं भौतिक तत्वों से निर्मित है. आत्मा इन सब लौकिक कार्य-कारण से कोई वास्ता नहीं रखती. लेकिन आत्म-प्रकृति प्रदत्त भोग एश्नाओं आदि माया मोह में लिप्त होती है इसलिए उसे 'पुनरपि जननम् पुररपि मरणम्' की अंतहीन चक्र में पड़ कर परमात्मा से अलग हो जाती है. वहीं चार्वाक का प्रसिद्ध वाक्य 'को अपि जननम् को अपि मरणम् त्रणं कृत्वा घृतं पिबेत्' अलग राह दिखाता है.

उपनिषद् में वर्णित आत्मा और परमात्मा को कुछ इन बिंबों से चित्रित किया गया है कि एक वृक्ष पर दो चिड़िया बैठी है. वृक्ष को प्रकृति, आत्मा को वह चिड़िया कहा गया है

> हमारे यहां एक संप्रदाय निरंजनी धारा भी अस्तित्व में मिलता है. इस संप्रदाय की ख़ासियत यह है कि इनके यहां मौत दुर्दांत, पीड़ादायक या कष्टकर नहीं होता. मृत्यु तो उस परमात्मा से मिलने का रास्ता प्रशस्त करता है.

जो पेड़ पर लगे फलों को खाती है. परमात्मा को दूसरी चिड़िया के तौर पर माना गया है कि वह प्रकृति, आत्मा जो प्रकृति की क्रियाओं में लिप्त है उन्हें एक साक्षी भाव देखने वाला है. इसलिए उसे समस्त तापों से विलग माना गया है. इस अवधारणा व इस सिद्धांत में विश्वास करने वालों को त्रैतवादी माना गया है. वहीं द्वैतवादियों की दृष्टि में सिर्फ आत्मा और परमात्मा को स्वीकारा गया है. आत्मा जो शरीर धारण करती है, किंतु परमात्मा जन्म-मृत्यु से परे होता है. दोनों में अंतर यही माना गया है कि एक शरीर धारण करता है. फिर उसका परित्याग करता है. लेकिन परमात्मा अजन्मा और अनश्वर माना गया है. दोनों में यदि कोई तत्व अंतर करती है तो वह है कि आत्मा समस्त सुखदुख, लाभहानि, मानपमान, ज्ञानाज्ञान आदि से अलग नहीं होता. वहीं परमात्मा इन सभी बंधों से मुक्त रहता है.

जीवन और लोक को करीब से देखने, समझने वाले कबीर ने क्या गहरी बात अपनी सधुक्कड़ी अंदाज़ में कही थी, जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर-भीतर पानी फुटा कुंभ जल जल ही समाना, ये तत् बुझों जानि. तथाकथित अनपढ़ कबीर ने अपने अनुभव के आधार पर आत्मा-परमात्मा के विभेद को जिस साधारण ढंग से समझाने की कोशिश की. वहीं इसी तथ्य को समझाने के लिए ग्रंथों की रचना की गई. सहज तथ्य को साधारण ढंग से बताने का माद्दा कबीर में ही था. वहीं जब हम अद्वैतवादियों की नजर से देखें तो उनकी मान्यता को आधार देने वाली बादरायणकृत् ब्रह्म सूत्र में बताया गया है कि महाकाशः घटाकाशः में तत्वतः कोई अंतर नहीं है. हमें जो घड़े के भीतर का आकाश और बाह्य आकाश दिखाई देता है. वास्तव में दोनों में कोई अंतर नहीं है. सिर्फ पात्र अलग-अलग होने की वजह से वह व्यापक आकाश उन-उन बर्तनों का आकाश बन जाता है. लेकिन जैसे ही घड़ा फूट जाता है फिर यथावत् महाकाश हो जाता हैं. उसी तर्ज पर आत्मा और परमात्मा को समझाया गया है. आत्मा अज्ञानता, माया, लौकिक कर्मों और भौतिक क्रियाओं में लिप्त रहने की वजह से अलग होती हैं. लेकिन जब अज्ञानता, माया-मोह की चादर फट जाती है तब आत्मा का द्वैत समाप्त हो जाता है.

भारतीय जनमानस में आत्मा-परमात्मा, जीवन-मृत्यु को लेकर भी कई तरह की धारणाएं, मान्यताएं एवं वैचारिक धाराएं प्रचलित हैं. कोई धारा निर्गुण की ओर इशारा करता है वहीं दूसरी धारा सगुण की ओर. इसी धारणा को साकार-निराकार के तौर पर भी वर्णन किया गया है. यदि साकार और निराकार को दूसरे शब्दों में कहें तो समस्त गुणों यानी प्राकृतिक गुणों से परिपूर्ण भगवान व इष्ट की परिकल्पना करने वाले. वहीं दूसरी ओर निगुर्ण वालों की नजर में वह सर्वशक्तिमान ईश्वर किसी भी प्राकृतिक गुणावगुणों से निर्लिप्त होता है. ईशोपनिषद् के पहले मंत्र में कहा गया है-

'ईशावास्यमिदं यत्किंचजगत्यां जगत् तेन त्येक्तेन भुंजिथा मां गृद्घः कस्यस्विधनम्.'

तुलसी, सूर, मीरा, महादेवी वर्मा आदि ने जहां अपने सगुण इष्ट को पति, दाता, पुत्र के रूप में गाया, माना और महाकाव्यों की रचना की. साथ ही रामचरित मानस, सूर सागर, विनय-पत्रिका, श्रीमद्भागवत गीता एक दृष्टि से अपौरूषेय भगवत् कृत माना गया है. वहीं निगुर्ण वादियों के आंगन में कृष्ण और राम तो हैं किंतु भगवान के रूप में नहीं. बल्कि वो दशरथ पुत्र राम और कृष्ण एक व्यक्ति के तौर पर हैं.

इन्हें अलौकिक शक्तियों के सृजक की बजाए एक साधारण जीव माना गया है.

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भक्ति आंदोलन का ख़ासा महत्व है. भक्ति आंदोलन इस दृष्टि से भी अहम हो जाता है, क्योंकि इस काल खंड़ में जिस प्रकार की विभिन्न धारणाएं, स्थापनाएं समाज में तेजी से फैल रही थीं. वह एक तरह से आमजन को भयाक्रांत करने का एक साधन बन गया था - भक्ति व धर्म जनित संप्रदाय. यहां आमजन को अतिवाद की जकड़नों से यदि कोई मुक्त करा सकता था तो वह निर्गुण पथ के राही थे. जब हम व्यापकतौर से निर्गुण पर मनन करते हैं तो पाएंगे कि कबीर, दादू दयाल, रैदास, गुरुनानक, जायसी, घनानंद आदि कवि और एक सजग सामाजिक होने की वजह से दिग्भ्रमित आम जन को राह दिखाने का काम कर रहे थे. इसी दौर में सूफी संप्रदाय भी उभरा साथ ही निरंजनी संप्रदाय के वजूद में आने की जानकारी हिंदी साहित्य के इतिहास पलटने से मिलती है.

सूफी शब्द वास्तव में मक्का मदीना के बुर्जों-मेहराबों के पवित्र, स्वच्छ पत्थर के लिए इस्तेमाल किया गया है. लेकिन इतने से शब्द की पेचीदिगियां दूर नहीं हुईं. इसलिए सूफी शब्दों को लेकर अर्थ की तलाश जारी रही. सो शब्द मीमांसा के पश्चात् सूफी का अर्थ सर्वसम्मति से उन से लिया गया है. जहां सगुण में ईश्वर किसी न किसी रिश्ते में बंधे दिखाई देते हैं. वहीं सूफी घराने में ईश्वर को पति और अपना प्रेमी या प्रेमिका के तौर पर आराधना की गई है. कबीर के यहां वह मोरे रामभरतार के रूप में व्याख्यायित मिलते हैं. या 'मैं राम का कुकुर. कालू मेरा नाम' मानते हैं. दूसरी ओर कबीर यह कहते हैं 'गावहूं सखि मंगल गान, आवहूं मोरे रामभरतार' वहीं सूफी में उसे अपना प्रियतम मान कर उसे गाया गया है. मीरा, तुलसी या सूर के राम-कृष्ण और दादू, रैदास, गुरुनानक आदि के राम-कृष्ण दूसरे रूप में आते हैं. कई ऐसे संत व सूफी बाबाओं ने उस परम शक्ति व उसकी भक्ति उसमें समाहित करने के लिए किया गया है.

कबीर से कैलाशा तक यदि हम एक विहंगम दृष्टि डालें तो पाएंगे कि वह निराकार, निर्गुण के तत्व भारतीय क्लासिकल संगीत से लेकर लोकगीतों तक में मिलते हैं. कुमार गंधर्व की गायकी जहां 'उड़ जाएगा हंस अकेला, रह जाएगा जग दर्शन का मेला जैसे पात गिरे तरुवर के' शास्त्रीय संगीत इस तरह के निर्गुण तत्वों एवं अर्थों से अटे हुए हैं. कैलाश खेर की गायकी में सूफी का स्पर्श प्रचुरता से मिलता है. हमारे यहां एक संप्रदाय निरंजनी धारा भी अस्तित्व में मिलता है. इस संप्रदाय की ख़ासियत यह है कि इनके यहां मौत दुर्दांत, पीड़ादायक या कष्टकर नहीं होता. मृत्यु तो उस परमात्मा से मिलने का रास्ता प्रश्स्त करता है. लोक कंठ से निकलने वाले 'हंसा चलले सत लोक बगलवा से निकलब ये साधु दस दरवाजा रहल बंद कवन राह निकलल ये साधो.'

■

60 MILLION

CHILDREN IN INDIA

have no means to go to school

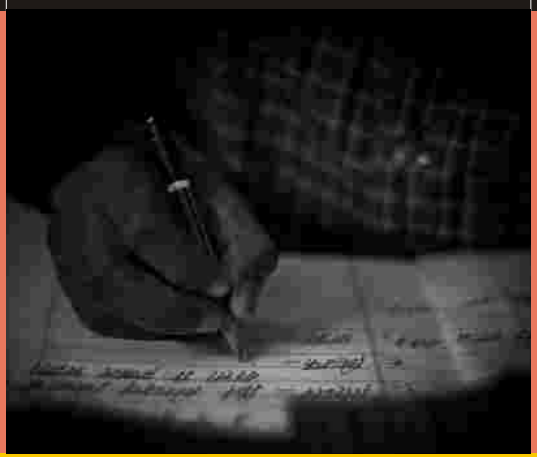

Contribute just Rs. 2750*

and send one child to school

for a whole year

Central & General Query

info@smilefoundationindia.org

http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

हरमिन्दर सिंह
गजरौला जिला ज्योतिबाफुले नगर, उत्तर प्रदेश में जन्म. अंग्रेज़ी साहित्य से स्नातक. पत्रकारिता और लेखन में संलग्न. वृद्धों पर 'वृद्धग्राम' vradhgram18.blogspot.com ब्लॉग लिखते हैं.
सम्पर्क : द्वारा- गजरौला टाइम्स, विजयनगर, गजरौला-२४४२३५ जि. ज्योतिबाफुले नगर. उ.प्र. ईमेल- gajrola@gmail.com

आँखों देखी

उपेक्षित सुरसरी तट को विकास की दरकार

उत्तरप्रदेश के जिले जे.पी. नगर और पंचशील नगर की सीमा रेखा बनी गंगा नदी के एक ओर ब्रजघाट और दूसरी ओर कांकाठेर तथा तिगरी गांव बसे है. यह स्थान राष्ट्रीय राजमार्ग-२४ पर दिल्ली से ९४ किलोमीटर दूर स्थित है. यहां बस व रेल सेवायें जारी हैं.

यहां प्रति वर्ष कार्तिक पूर्णिमा पर एक सप्ताह तक 'मिनी कुंभ' की तर्ज पर विशाल मेला लगता है. गंगा के दोनों तटों पर लाखों स्नानार्थी अगाध श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के साथ विभिन्न धार्मिक कर्मकांड करते हैं. मेला जहां भारतीय जन मानस के हृदय में गंगा के महत्व का जीवंत प्रमाण है वहीं हमारी लोक परंपराओं की युगों से चली आ रही निशानी भी है.

उत्तरप्रदेश के विभाजन से नया प्रदेश उत्तराखंड अस्तित्व में आने से शेष उत्तरप्रदेश में कोई विशेष तीर्थ पर्यटक स्थल नहीं बचा. यदि ब्रजघाट से कांकाठेर और तिगरी तक के गंगा तटवर्ती क्षेत्र को विकसित कर एक पर्यटक स्थल का रूप प्रदान किया जाये तो यहां आने वाले स्थानार्थियों को यह स्थान जहां और भी आकर्षित करेगा वहीं उत्तरप्रदेश को एक 'मिनी हरिद्वार' उपलब्ध हो जायेगा जहां पर्यटन की अपार संभावनायें हैं. यहां केवल देश की सर्वाधिक पवित्र नदी गंगा नदी ही नहीं है बल्कि आठ किलोमीटर के क्षेत्र में गजरौला तक मतवाली, बगद और छोईया नामक तीन अन्य गंगा की सहायक नदियां भी बहती हैं. वास्तव में यहां चार नदियों का क्षेत्र है जो स्वयं में एक रमणीय लेकिन उपेक्षित क्षेत्र बना हुआ है.

> *यहां प्रति वर्ष कार्तिक पूर्णिमा पर एक सप्ताह तक 'मिनी कुंभ' की तर्ज पर विशाल मेला लगता है. गंगा के दोनों तटों पर लाखों स्नानार्थी अगाध श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के साथ विभिन्न धार्मिक कर्मकांड करते हैं.*

एक दशक पूर्व पिलखुवा-हापुड़ विकास प्राधिकरण ने ब्रजघाट के थोड़े से क्षेत्र का विकास तथा सौन्दर्यीयकरण हरिद्वार की हरि की पैड़ी की तर्ज पर किया है जहां पक्के घाट बनाकर एक घंटा-घर का निर्माण तो किया ही गया है. उसी के साथ इस स्थान पर लोगों के बैठकर गंगा को दूर तक देखने के लिए बेंच भी स्थापित की हैं. यहां कई सौ लोग सूर्यास्त के समय गंगा की आरती में शामिल होते हैं. उस समय दूर तक फैली बल खाती गंगा नदी की विशाल धारा बहुत ही रमणीय प्रतीत होती है. इस समय यहां का दृश्य हरिद्वार से मनोहारी और शांतिदायक महसूस होता है.

यदि इस किनारे को गढ़मुक्तेश्वर की ओर तथा दूसरे पर कांकाठेर से तिगरी तक पक्का करके उसके निकटवर्ती शेष

क्षेत्र का सौन्दर्यीयकरण किया जाये तो एक बेहद मनोहारी धार्मिक पर्यटक स्थल बन सकता है.

यहां से राष्ट्रीय राजमार्ग गुजरता है जो देश की राजधानी को कई राज्यों की राजधानियों और प्रमुख शहरों से जोड़ता है. यहां से गुजरने वाले विदेशी लोग प्रायः ब्रजघाट पर थोड़ समय जरूर रुकते हैं और यहां की गंगा और ब्रजघाट के मनोरम दृश्यों का आनंद लेकर उन्हें अपने कैमरों में कैद करके भी ले जाते हैं.

विगत डेढ़ दशक से ब्रजघाट का महत्व और भी बढ़ गया है. महाशिव रात्रि के अवसर पर यहां से कांवर ले जाने वालों

> *साइबेरियन पक्षी मौसम बदलने के कारण यहां प्रति वर्ष शरद ऋतु में आते हैं तथा यहां कलरव करते हुए लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और ठंड बीतते ही यहां से स्वदेश लौट जाते हैं.*

की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है. पहले यहां ऐसा नहीं था लेकिन जब से यहां थोड़ा सौन्दर्यीकरण हुआ और गंगा की आरती का क्रम शुरू हुआ तभी से यहां कांवर भरने वालों की संख्या भी बढ़ने लगी.

इन कांवरों को बनाने वाले कारीगरों में मुस्लिमों की भी

खासी तादाद है. इससे हिन्दू और मुस्लिम दोनों की तबकों को रोजगार भी हासिल हुआ है. कांवर वर्ष में दो बार भरी जाती हैं. जबकि प्रति अमावस्या और पूर्णिमा पर स्नान करने वालों की यहां इतनी भीड़ होती है कि राजमार्ग पर जाम तक लग जाता है. इसी के साथ यहां शवदाह संस्कार भी संपन्न होते हैं. देश के विभिन्न भागों से लोग यहां मृतकों के दाह संस्कार तथा अस्थि-विसर्जन के लिए आते रहते हैं. ये संस्कार ब्रजघाट और तिगरी दोनों ही स्थानों पर होते हैं.

शरद ऋतु में यहां विदेशी पक्षी भी देखने को मिलते हैं. ये जनवरी में यहां आते हैं और मार्च के मध्यान तक यहां रुक कर फिर अपने वतन लौट जाते हैं. वन विभाग के एक अधिकारी के मुताबिक ये साइबेरियन पक्षी हैं जो मौसम बदलने के कारण यहां प्रति वर्ष शरद ऋतु में आते हैं तथा यहां कलरव करते हुए लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और ठंड बीतते ही यहां से स्वदेश लौट जाते हैं.

इन पक्षियों के झुंडों को देखने काफी लोग यहां आते हैं जिनमें हमारे अप्रवासी भारतीयों के साथ विदेशी मेहमान भी होते हैं. इसमें कोई शक नहीं कि यदि राज्य सरकार पांच-छह किलोमीटर में फैले इस स्थल का सौन्दर्यीकरण कर दे तो यह देश का खूबसूरत धार्मिक पर्यटक स्थल तो बनेगा ही साथ ही इससे क्षेत्रीय लोगों को रोजगार भी उपलब्ध होगा.■

वन्दना गुप्ता

पढ़ने-लिखने में दिलचस्पी. अपने हिन्दी ब्लॉग http://vandana-zindagi.blogspot.com पर लिखती हैं. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी एवं आलेख प्रकाशित. 'हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास' पुस्तक प्रकाशित. ऑल इंडिया ब्लॉगर्स एसोसियेशन नामक ब्लॉग की अध्यक्ष हैं.

सम्पर्क : rosered8flower@gmail.com

ब्लॉग चर्चा

गागर में सागर हैं साझे ब्लॉग

इस बार हम कुछ साझा ब्लोग्स की चर्चा करेंगे जिन्होंने अपना एक खास मुकाम बनाया है. क्यूँकि इनके माध्यम से काफी नए रचनाकारों को एक प्लेटफ़ॉर्म मिल गया जहाँ वो अपने विचारों को सबसे साझा कर सकते हैं और साथ ही बाकी ब्लोगर्स को भी काफी नए-नए ब्लोगर्स की रचनायें एक ही जगह पढ़ने को मिल जाती हैं.

www.sahityapremisangh.com *साहित्य प्रेमी संघ* ब्लॉग के संचालक हैं **सत्यम शिवम्**. इतने कम समय में उन्होंने इस साझा मंच की एक विशेष पहचान बनाई है. उनके द्वारा लिखे आलेख और कवितायों विभिन्न अख़बारों में समय-समय पर प्रकाशित हो रहे हैं. नए रचनाकारों को ये मंच प्रदान करके सत्यम जी ने उन्हें तो एक पहचान ही दी है साथ ही आज उनके इस मंच से ५२ रचनाकार जुड़ गए हैं और इतने कम समय में इतनी पहचान बनाना किसी उपलब्धि से कम नहीं.

www.rachanakar.org *रचनाकार* **रवि रतलामी** द्वारा संचालित एक ऐसी ई पत्रिका है जो यूनिकोड पर आधारित पहली ई-पत्रिका है जिसके हजारों नियमित पाठक हैं. यहाँ साहित्य की हरेक विधा देखने को मिलती है. यहां सस्वर विडिओ भी स्वीकार किये जाते हैं जो उसी रूप में प्रकाशित भी होते हैं. यहाँ पुस्तकों की समीक्षा, साहित्यिक गतिविधियाँ, व्यंग्य, संस्मरण, नाटक, कविता, आलेख, कहानियां, लघुकथाएं, ग़ज़ल, चुटकुले, बाल-कथाएँ, उपन्यास, निबंध सबको स्थान मिला है और यही इसकी लोकप्रियता की कुंजी है.

www.nukkadh.com *नुक्कड़* **अविनाश वाचस्पति** द्वारा संचालित ब्लॉग है, जिसमें हर तरह की गतिविधि का अवलोकन किया जा सकता है फिर चाहे वो साहित्यिक हो, राजनितिक को, सूचनार्थ हो या ब्लोगिंग से सम्बंधित. जैसे गली के नुक्कड़ पर जाकर सारे जहान की जानकारियां मिल जाती हैं उसी तरह इस नुक्कड़ पर आकर कहाँ क्या हो रहा है, कहाँ कौन सा आयोजन हो रहा है, किसे पुरस्कार मिला इत्यादि सारी जानकारियां उपलब्ध रहती हैं.

www.bhadas.blogspot.com *भड़ास*. जैसा नाम वैसे गुण. इसी को चरितार्थ करता है **यशवंत सिंह** द्वारा संचालित यह ब्लॉग, जो आप कहीं नहीं कह पाते यहाँ आकर कह दीजिये. इनका कहना है यदि आपके गले में कुछ अटक गया है तो उगल दीजिये मन हल्का हो जायेगा.

allindiabloggersassociation.blogspot.com *आल इंडिया ब्लोगर असोसिएशन*. **सलीम खान** द्वारा संचालित इस ब्लॉग ने बहुत जल्द पाठकों में अपनी पैठ बनाई है. सर्वधर्म समभाव का दर्शन इनके ब्लॉग पर होता है और महिलाओं का विशेष आदर किया जाता है जिसका उदाहरण यही है कि इस ब्लॉग कि अध्यक्षा एक महिला ही हैं. इसके अलावा इन्होंने

महान ममता मंडल बनाया है जहाँ महिलाओं को विशेषाधिकार प्राप्त हैं जिसके द्वारा ये सन्देश देना चाहते हैं कि सभी को महिलाओं को उचित मान सम्मान देना चाहिए जिसकी वो वास्तविक हक़दार हैं.

www.hindisahityamanch.com ***हिंदी साहित्य मंच*** हिंदी का एक विरवा लगाये जाने के उद्देश्य से, हिंदीभाषी राष्ट्र की कल्पना को साकार करने के उद्देश्य से हिंदी साहित्य मंच का गठन हुआ. हिंदी साहित्य मंच पर कौन-सी ऐसी विधा है जिसका अलंकरण ना हुआ हो फिर चाहे गीत हों, अकविता हो, साक्षात्कार हों या समीक्षा हो, पुस्तक समीक्षा हो या संस्मरण हों, व्यंग्य हों या साहित्यिक हलचल, हर विधा पर यहाँ लिखा गया है जो इस बात को इंगित करता है कि हिंदी साहित्य मंच किस तरह जी जान से जुटा हुआ है हिंदी को उसका मुकाम दिलाने के लिए.

urvija.parikalpnaa.com *वटवृक्ष*. आज वटवृक्ष ब्लॉगजगत में किसी परिचय का मोहताज नहीं. इतने अल्प समय में ऐसी ख्याति और ऐसी उपलब्धि शायद ही किसी को मिली हो. वटवृक्ष का सञ्चालन **रश्मि प्रभा** और **रविन्द्र प्रभात** के सम्मिलित प्रयासों द्वारा किया जाता है. आज हर लेखक, कवि और साहित्यकार अपने को वटवृक्ष से जुड़ा महसूस करके गौरान्वित महसूस करता है. हर लेखक का यहाँ स्वागत है उसकी लिखी रचनाएँ सब पाठकों तक जल्द से जल्द पहुँचती हैं ना केवल पहुँचती हैं बल्कि नए-नए लोगों से जुड़ने

का भी मौका मिलता है साथ ही नए लेखकों को पढ़ने का भी. जब इतनी खूबियाँ एक ही जगह उपलब्ध हों तो कौन नहीं चाहेगा ऐसे मंच से जुड़ना.

bhartiynari.blogspot.com *भारतीय नारी* ब्लॉग अभी हाल ही में बना है और जैसा कि नाम से पता चलता है ये ब्लॉग भारतीय नारियों की समस्याओं, उनकी उलझनों, उनके अधिकारों इत्यादि पर विचार-विमर्श करता है. आज स्त्री विमर्श एक सबसे अहम् हिस्सा है किसी भी लेखक के लिए और **शिखा कौशिक** द्वारा संचालित ये ब्लॉग स्त्रियों की दयनीय दशा, उनके व्यवहार, उनकी कैसे मदद की जाये, शिक्षा के महत्त्व और भ्रूण हत्या को कैसे रोका जाये जैसे मुद्दों पर विचार-विमर्श करती है.

blogworld-rajeev.blogspot.com *ब्लॉग वर्ल्ड* एक ऐसा अग्रीगेटर है जहाँ आपको सभी लेखकों की पोस्ट आसानी से पढ़ने को मिल जाएँगी. जो भी इस ब्लॉग से जुड़ना चाहता है सिर्फ कमेन्ट बॉक्स में अपने ब्लॉग का यूआरएल दे दे उसे जोड़ दिया जाता है और फिर आसानी से सब पाठकों तक उस ब्लॉग की पहुँच हो जाती है इसके अलावा ब्लॉग वर्ल्ड एक पोस्ट के माध्यम से अपने से जुड़े लेखकों का भी परिचय

> *साझा ब्लोगों ने ब्लॉगजगत में अपनी एक पहचान कायम की है साथ ही सभी ब्लोगर्स को जुड़ने का मौका दिया है जो ये दर्शाता है कि हिंदी को प्रोत्साहित करने में हर इन्सान अपना सहयोग किसी भी रूप से दे सकता है.*

प्रस्तुत करता रहता है जिससे उस लेखक के विचार और उसके ब्लॉग की पहुँच भी सब पाठकों तक आसानी से हो जाती है.

blogsinmedia.com *ब्लोग्स इन मीडिया* जैसा कि नाम से विदित हो रहा है मीडिया में जिन भी ब्लोग्स का जिक्र होता है उस खबर को सबसे पहले पाठकों तक पहुँचाने का काम ब्लोग्स इन मीडिया कर रहा है. अपनी तरह का अनोखा ब्लॉग है पूरे देश में कौन से अख़बार में किस ब्लॉग की चर्चा की गयी उसे खोजना और यहाँ उसकी जानकारी देना ये कोई कम बात नहीं है और अपने इस कार्य में ये ब्लॉग सफल हो रहा है.

aakharkalash.blogspot.com *आखर कलश* हिंदी साहित्य को दिशा देता एक सृजनात्मक ब्लॉग है जो **नरेन्द्र व्यास** द्वारा संचालित हैं. उनके अलावा पंकज त्रिवेदी, सुनील गज्जानी भी इसके संपादक मंडल में शामिल हैं. हिंदी के नए-नए कवियों को आमंत्रित करना और उनकी बहुमूल्य कृतियों से पाठकों को लाभान्वित करना ही इनके ब्लॉग का मुख्य उद्देश्य है जिसे ये सब मिलकर बखूबी अंजाम दे रहे हैं.

www.janokti.com *जनोक्ति.कॉम* के बारे में **जयराम विप्लव** कहते हैं - वेब पर हिंदी के पाठकों को स्तरीय मानसिक खुराक परोसने के लक्ष्य को लेकर इसे शुरू किया गया. महज एक साल से भी कम समय में इस लक्ष्य के सैकड़ों भागीदार बन गए. ६०० से अधिक पंजीकृत लेखक सहभागी. रोजाना हजारों पाठक और उनकी सैकड़ों टिप्पणियाँ हमारे मनोबल को बढ़ाती हैं.

raj-bhasha-hindi.blogspot.com *राजभाषा हिंदी* **मनोज** द्वारा संचालित ऐसा ब्लॉग है जहाँ हिंदी के बड़े-बड़े कवियों की कवितायें तो प्रदर्शित होती ही हैं बल्कि साथ में उदीयमान और स्थापित कवियों की कविताओं को भी वैसा ही सम्मान मिलता है. हर तरह की विधा का यहाँ रसास्वादन किया जा सकता है .

yaadonkaaaina.blogspot.com *हिन्दुस्तान का दर्द* एक ऐसा ब्लॉग है जो अपने बारे में कहता है - अगर आप करते हैं सार्थक लेखन और आप उठा सकते है किसी भी मुद्दे पर अपनी आवाज़ को, तो यह मंच है आपके लिए, आप अपनी रचनाओं को mr.sanjaysagar@gmail.com पर मेल करें उन्हें यहाँ प्रकाशित किया जायेगा..

प्यारी माँ pyarimaan.blogspot.com जैसा कि नाम से विदित है. पूर्ण रूप से माँ को समर्पित ये ब्लॉग **अनवर जमाल** द्वारा संचालित है. हर वो इंसान जिसकी आत्मा मृतप्राय नहीं हुई है और जो महसूस कर सकता है दूसरे का दर्द और एक माँ की ज़िन्दगी में क्या अहमियत होती है - वो यहाँ अपने विचारों को चाहे आलेख, चाहे कविता या किसी भी विधा में रख सकता है और सबसे बड़ी खासियत ये है कि इस ब्लॉग से ज्यादातर महिलाएँ जुड़ी हैं जो यहाँ समय-समय पर अपनी संवेदनाओं को उकेरती रहती हैं.

www.apnimaati.com **अपनी माटी** वेबपत्रिका साहित्यिक गतिविधियों का एक जीता जागता उदाहरण है, जहां गैर राजनैतिक और धर्म निरपेक्षता की विचारधारा को ध्यान में रखते हुए साझेदारी में रचनाओं का प्रकाशन किया जाता है. यहाँ उन सभी कार्यकर्ताओं और कलाधर्मियों का स्वागत रहता है जो अपने परिवेश के सार्थक विचारों, घटनाओं और चर्चाओं को यहाँ अपने लोगों तक पहुंचाने का मन रखते हैं.

इस प्रकार साझा ब्लोगों ने ब्लॉगजगत में अपनी एक पहचान कायम की है साथ ही सभी ब्लोगर्स को जुड़ने का मौका दिया है जो ये दर्शाता है कि हिंदी को प्रोत्साहित करने में हर इन्सान अपना सहयोग किसी भी रूप से दे सकता है.■

. डॉ. प्रताप सहगल

१० मई १९४५ को जन्म. जाने-माने कवि-आलोचक, उपन्यासकार एवं नाटककार. प्रकाशित कृतियाँ : नाटक - अन्वेषक, छूमंतर, चार रूपांत, नहीं कोई अन्त, पाँच रंग नाटक, प्रियकांत (उपन्यास). रचनाओं का बल्गारियाई, अफ्रीकी, नेपाली, बर्मी एवं स्पानी में अनुवाद हुआ है. मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, साहित्य कला परिषद् का नाट्यालेख पुरस्कार तथा भारत सरकार के राजभाषा सम्मान से पुरस्कृत हो चुके हैं.

सम्पर्क : एफ-१०१, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-११००२७ ईमेल : partapsehgal@gmail.com

यात्रा-वृत्तांत

अंतिम किस्त

पत्थर, पानी और जंगल

कान्हा की तरह से यहाँ भी हमें सुबह-सवेरे जाग कर ही जंगल की यात्रा के लिए निकलना था. बाहर निकल कर देखा, सवेरा कहीं दूर से आहट दे रहा था. अपनी कुटिया से ही जंगल की ओर उत्सुकता वश झांक कर देखा, कोई बाघ गई रात अपना डिनर वहीं करके जा चुका था. अब वहाँ सिर्फ़ किसी जानवर की हड्डियाँ अपना बयान दे रही थीं.

हम कुछ वक़्त के बाद हम बांधवगढ़ बाघ-आरक्ष के प्रवेश-द्वार के सामने एक जीप में लदे खड़े थे. बांधवगढ़ कान्हा की अपेक्षा छोटा उद्यान है. केवल ४४८ वर्ग किलोमीटर. और यहाँ बाघों की संख्या का, प्रति वर्ग-किलोमीटर की दृष्टि से, घनत्व भी अधिक है. यह इलाका कभी पुराने रीवा राज्य का ही हिस्सा था. यह वही उद्यान है, जहाँ सफ़ेद बाघ मिलते थे. कहते हैं कि अंतिम सफ़ेद बाघ का शिकार रीवा के महाराजा मार्तण्ड सिंह ने १९५१ में किया था. महाराजा ने उसकी ख़ाल में भुस भरवा कर अपने ही राजमहल में टंगवा दिया. वह आज भी वहाँ इसी रूप में मौजूद है. उनके राज्यकाल में यह उनकी शिकारगाह ही थी, जिसे १९६८ में एक राष्ट्रीय उद्यान के रूप में विकसित किया गया. यूँ तो बांधवगढ़ में सांबर, बार्किंग डियर और नीलगाय आदि मिलाकर कुल बाईस तरह के जानवरों और दो सौ पचास तरह के पक्षियों को रखा गया है, लेकिन यहाँ भी मुख्य आकर्षण का बिन्दु बाघ ही रहता है. हम भी बाघ की तलाश में अपनी जीप से धूल उड़ाते चले जा रहे थे. हमारा गाइड और ड्राइवर दोनों पगमार्क ढूँढते हुए वहाँ जा पहुँचे, जहाँ एक नहीं दो-दो बाघ खुले दर्शन दे रहे थे. राजसीय मुद्रा में बैठे बाघ सुबह की सुनहरी धूप का सुख ले रहे थे. हमारी जीप वहाँ लगते ही पलों के अंतराल में जीपों का जमघट हो गया. सभी एकदम सांस साध कर उन खूबसूरत बाघों को निहार रहे थे. माहौल में उत्साह और हर्ष भरा सन्नाटा था. सिर्फ़ कैमरों के शटरों के खुलने और बंद होने की आवाज़े सुनाई दे रही थीं. सभी को हिदायत दे दी गई थी कि खामोशी का आलम बरक़रार रखते हुए ही बाघों की साइटिंग अच्छी तरह से की जा सकती है.

मैंने शशि के कान के पास अपना मुँह ले जाकर फुसफुसाहट की - फ़ोटो लो. और उसने अपना कैमरा आन कर दिया. मैं अपने कैमरे से उनकी फ़िल्म बना रहा था. इतने में गाइड का हल्का सा स्वर सुनाई दिया - फ़ोटो, देखिए कैसा पोज़ दे रहा है. सचमुच हमने जंगल में खुले बाघों को पहले कभी नहीं देखा था. कान्हा में

फोटो : डॉ. प्रताप सहगल

देखा हुआ टाइगर-शो एक तमाशा था, बहुत खूबसूरत तमाशा, लेकिन इस तरह से बाघों को विचरते देखना रोमांच की पराकाष्ठा थी. हम वहां तब तक मौजूद रहे, जब तक वे बाघ ही उठकर जंगल में कहीं विलीन नहीं हो गए.

हमारे ज़हन में कई सवाल थे, लेकिन सबसे बड़ा सवाल यही कि अगर कभी बाघ हमला करदे तो? तब गाइड ने बताया कि कभी-कभी टाइगर चार्ज करता है, लेकिन आप खामोश रहें तो वह लौट जाता है. उसे जब तक कोई ख़तरा महसूस न हो, वह चार्ज नहीं करता. अपनी सुरक्षा कौन नहीं करना चाहता? और फ़िर बाघ! उसके पास तो खुद को सुरक्षित रखने की अपार क्षमता भी है. उन्हें उन बाघों की पहचान थी और वे उनकी आदतों से भी वाकिफ़ थे, लेकिन साथ ही आगाह कर देते कि फ़िर भी जानवर तो ही है न. किसी भी बाघ के बारे में शत-प्रतिशत कुछ भी नहीं कहा जा सकता और फ़िर उन्होंने दो-एक वारदातें भी सुनाईं. जंगल देखने के यह ख़तरे तो उठाने ही पड़ते हैं.

हम तृप्त भाव से जंगल के परिवेश में घूमने लगे. साल के लंबे-ऊँचे पेड़ों की छाया हमें सुख दे रही थी. बांधवगढ़ के इन पेड़ों से झरते पत्ते मवेशियों की भोजन-सामग्री है. कहीं ताल, कहीं छोटी-छोटी सरणियों के आसपास से निकलते हुए हम विष्णु की शेष-शैया देखने के लिये जा रहे थे. सारे रास्ते बाँस के घने जंगलों में विचरते कहीं सांबर दिखे तो

कहीं चौसिंघा. बार्किंग डियर की भौंक तो सुनाई दी, लेकिन वह कहीं दिख नहीं रहा था. जंगली सूअर दूर एक तलैया में लोट लगा रहे थे. पक्षियों की हमें अधिक जानकारी नहीं, फ़िर भी कुछ आवाज़ों को हम पहचान रहे थे.

जंगल में थोड़ी ऊँचाई पर विष्णु शेष-शैया पर लेटे सदियों से विश्राम कर रहे थे. शैया के ऊपर से एक जलधार निरंतर गिर रही थी जो जंगल से बाहर जाकर एक छोटी से नदी का रूप ले लेती है. विष्णु की उस लेटी हुई प्रतिमा के पास ही एक शिवलिंग की स्थापना भी कर दी गई थी. उसके बाद हम लोग सदियों पुरानी गुफ़ाओं में पहुँचे. इन पुरानी गुफ़ाओं में कहीं मंदिर था तो कहीं संस्कृत में कुछ श्लोक दीवारों पर उकेर दिए गए थे. उनके बारे में कोई प्रमाणिक जानकारी जुटाने वाला वहाँ कोई नहीं था. सो केवल अनुमान के आधार पर कुछ कहना संभव नहीं. पुरातात्त्विक जानकार की हमें वहाँ ज़रूरत महसूस हुई, जो अक्सर लोगों को नहीं होती.

> *रेंजर को ख़बर मिली कि हाथी ने रास्ता बदल लिया है और वो अभी इधर नहीं आ रहा. उसे बेहोश करके पकड़ने की कोशिश भी शुरू हो चुकी हैं. बाहर की ओर भागती जीपों में बैठे लोगों के चेहरों पर इत्मीनान के भाव गहराने लगे.*

इसके बाद बांधवगढ़ का किला देखने का मन था. हमारे अतिथि-गृह के मैनेजर ने कहा कि इतना थक कर वहाँ जाना हमारे लिए ठीक नहीं होगा. उसने हमें हमारी उम्र का हवाला भी दिया, लेकिन हम मानने वाले कहाँ थे. उसके लिए अलग से ख़ास जीप बुक करनी होती है. वह हमने की और कुछ खाने के बाद हम किले की ओर रवाना हो गए. एक युवा-दम्पत्ति, जो शायद इतना पैसा ख़र्च करने की स्थिति में नहीं थे, हमारे साथ हो लिए. हमें भी अच्छा लगा. रास्ता सचमुच ऊबड़-खाबड़ और चढ़ाई एकदम सीधी थी. यह किला बांधवगढ़ का सबसे ऊँचा बिन्दु है.

बाँधवगढ़ किले के निर्माण का कोई ऐतिहासिक रिकार्ड तो मौजूद नहीं है लेकिन माना जाता है कि इसका निर्माण लगभग दो हज़ार साल पहले हुआ होगा. नारद-पंचरात्र और शिवपुराण में इस किले के संदर्भ ज़रूर मिलते हैं. पहली शती के माघवंश से लेकर सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में बघेलों तक ने इस किले पर राज किया है. यह महाराज विक्रमादित्य सिंह की राजधानी रहा और १९३५ के बाद यह एक सुनसान इलाके में तब्दील हो गया.

हमारा जीप-ड्राइवर बड़ी दक्षता के साथ किले की सीधी ऊँचाई पर जीप चढ़ा रहा था कि एक जगह जीप वापिस फ़िसलते हुए कुछ नीचे आ गई. थोड़ी और नीचे जाती तो एक गहरे खड्ड में हम सब जीप समेत पड़े मिलते. ज़िन्दा या मुर्दा. मुझमें न जाने कहाँ से ऊर्जा आ गई और मैं जीप से नीचे उतर कर दम लगा कर भागते हुए सीधा ऊपर चढ़ गया. सभी हैरान थे और शशि डाँट लगा रही थी. बहरहाल हम मस्ती करते हुए आगे बढ़े. कबीर-कुटिया. कहते हैं कि संत लोग इधर आते-जाते रहते थे और कबीर भी कुछ अरसा यहाँ आकर रहे थे. आज भी यहाँ हर साल कबीर-पंथियों का मेला लगता है. उस समय की पाठशाला को देखना अलग तरह का अनुभव था. लताओं से घिरी उस पाठशाला के भग्नावशेष उस काल की शिक्षा-पद्धति के बारे में टिप्पणी करते लग रहे थे. शाही ख़ज़ाना रखने का कक्ष, रानी का महल, एक ही चट्टान से गढ़ी गई मछली और इधर-उधर बिखरी हुई कई पुरानी प्रस्तर प्रतिमाएँ अपना हाल बयान करते हुए जैसे कह रही हों, न कोई रहा है, न कोई रहेगा. वहाँ अंतिम पड़ाव था लक्ष्मण-मंदिर. भारत में संभवतः यह अपनी तरह का अकेला मंदिर है जिसे लक्ष्मण-मंदिर के नाम से जाना जाता है. वहाँ लक्ष्मण के अतिरिक्त राम और सीता की प्रतिमाएँ थीं, हनुमान भी वहाँ मौजूद थे, लेकिन है वह लक्ष्मण-मंदिर. किम्वदंति है कि राम ने यह किला लक्ष्मण को भेंट किया था. इसका कोई ऐतिहासिक या पौराणिक प्रमाण नहीं है. लोगों के विश्वास के सामने प्रमाण कोई काम करता है भला.

शाम चार बजे हमने एक बार फ़िर जंगल की ओर रुख़ किया. शाम को जानवर अक्सर पानी पीने निकलते हैं. खासतौर पर बाघ. कोई पाँच बजे का वक़्त था. हमारे साथ-साथ चल रहे फ़ारेस्ट-रेंजर के एक आफ़िसर ने हाँक लगाई-चलो, बाहर. गजराज मद में आ गया है और वहाँ बाघ का इंतज़ार करते तमाम लोगों में तेज़ हलचल हुई. एकसाथ कई जीपें स्टार्ट होकर रेंजर की मोटर-साइकिल के पीछे भागने लगीं. यह डर नहीं, वास्तविकता थी कि अगर हाथी उधर आ गया तो कोई नहीं बता सकता कि वह कितने लोगों की जान लेगा. जीप जंगल से बाहर जाने के लिए गेट की ओर भागी जा रही थी और मैं हँस-हँस कर अपने डर को दूर कर रहा था. गाइड बताने लगा, मतवाले गजराज के सामने किसी की क्या बिसात है साहब. यह जीप उसके सामने क्या चीज़ है, उलटा-पुलटा करके फेंक देगा.

पहले भी ऐसा कभी होता है? आप पूछिए तो सही, वहाँ लोगों के पास बताने के लिए अनंत किस्से हैं. पता यह चला कि हाथी के महावत को कुछ पैसा मिलता है कि वह अपने-अपने हाथी को कुछ शराब पिला सके. यह उन्हीं हाथियों में से एक है, जिनका इस्तेमाल टाइगर-शो के लिए किया जाता है. हाथी को थोड़ी दारू मिलती है तो वह खुश होकर सारा काम करता है और नहीं मिलती तो वह कई बार मद में आ जाता है. तो हाथी के हिस्से की दारू भी पी जाते हैं यह लोग. यहाँ भी भ्रष्टाचार. मेरे दिमाग़ में हाँथी-हाँथी कौंधने लगा. अगर कहीं कान्हा का हाथी भी मद में आ जाता तो?

रेंजर को ख़बर मिली कि हाथी ने रास्ता बदल लिया है और वो अभी इधर नहीं आ रहा. उसे बेहोश करके पकड़ने की कोशिश भी शुरू हो चुकी हैं. बाहर की ओर भागती जीपों में बैठे लोगों के चेहरों पर इत्मीनान के भाव गहराने लगे. थोड़ी ही देर बाद हम सभी बांधवगढ़ के बाघ-आरक्ष से बाहर थे.

अनुभवों की दुनिया का हमेशा विस्तार होता रहता है. अनुभवों की गहराई भी वक़्त के साथ-साथ और गहरी होती जाती है. कमी पड़ती है तो सिर्फ़ वक़्त की.■

गणेश शंकर विद्यार्थी

१८९०-१९३१

सांप्रदायिकता की बलिदेवी पर शहादत देने वाला हिन्दी पत्रकारिता का एक स्वाभिमानी व्यक्तित्व. प्रयाग के अतरसुइया मुहल्ले में जन्म. सुंदरलाल के संपर्क में आकर पत्रकारिता की ओर झुकाव. महावीर प्रसाद द्विवेदी के सहयोगी के रूप में १९१० में 'सरस्वती' में कार्य किया. १९१३ में कानपुर से 'प्रताप' का प्रकाशन. उनके लिए पत्रकारिता एक मिशन, देशसेवा का सर्वोत्तम साधन. १९३१ के सांप्रदायिक उपद्रव के दौरान कानपुर में २५, मार्च, १९३१ को धर्मांधों के हाथों शहीद.

नज़रिया

सुधारकों की भूल

जिस देश में सुधार की आवश्यकता नहीं, वह इस परिवर्तनशील संसार का भाग नहीं हो सकता. यहां तो सदा पुरानी इमारतों को नमस्कार किया जाता है. और नए महल खड़े होते हैं. स्थिति के अनुसार रूप में परिवर्तन करना पड़ता है. जिसमें परिस्थिति के अनुसार बनने का गुण नही रहा, वे बिगड़ गए. उनका नामो निशान

मिट गया और इतिहास के पन्ने या उनकी शानदार इमारत की बची-खुची ठिकरी संसार को कभी-कभी उनके अस्तित्व की याद दिला देती है. हमारे देश में सुधार की बड़ी भारी आवश्यकता है, केवल इसीलिए नहीं कि वह संसार का एक भाग है, किन्तु इसलिए भी कि उसे आगे बढ़ने वाले संसार का भाग बना रहना है. यद्यपि हमारा देश संसार के उन देशों में से है, जो पुरानी लीक ही पीटते रहना अधिक अच्छा समझते हैं तो भी परिस्थिति के अनुसार अपनी करवट बदलने के भाव का यह कुछ अस्तित्व अवश्य है. देश में एक दल है, जो देश की भलाई के नाम पर आगे बढ़-सा रहा है. उसका यह काम देखने में अच्छा है, सुनने में भला है, परन्तु विचार की कसौटी पर हम उसे अधिक दूरदर्शिता और अधिक दृढता से भरा हुआ नहीं पाते. जातीय सुधार का कोई प्रश्न उठाइए. देश में भिक्षुकों की संख्या कैसे घटाई जाए, बालकों को किस तरह साधू न बनने दिया जाए, देहात में सफाई का भाव किस तरह उत्पन्न कराया जाए, किसानों की दशा किस तरह सुधारी जाए, स्त्रियों को किस भांति उठाया जाए-छोटे से छोटे प्रश्न से लेकर बड़े से बड़े प्रश्न को उठाइए और उस पर देश के सुधारक दल के अर्ध-शिक्षित आदमी से लेकर कुर्सीतोड़ सुशिक्षित नेता तक घूम-फिरकर एक ही ठिकाने पहुंच जाएंगे. वे कहेंगे कि एक कानून बना दिया जाए और यह बात उस कानून से दूर हो जाएगी. इन बातों पर विचार करने का तनिक भी कष्ट नहीं उठाते कि पहले तो कानून बनवाने में कठिनाइयां हैं, फिर क्या उस कानून से वह बुराई दूर हो ही जाय यह पक्का नहीं है. दूसरे कानून से बुराई का वह रोग तो दब जाता है, परंतु उसका विष दूसरे रूप में प्रकट होकर मनुष्य को तंग करता है. हमारे सुधारक अधिक गलती पर न भी हों तो भी देश की स्थिति और उसके शासकों की अवस्था पर विचार करते हुए

> *वे सुधार नहीं कर रहे, नकल कर रहे हैं. उनके कामों और उनकी बातों से कुछ भी पता नहीं चलता कि वे नकल करना भी कभी छोड़ेंगे या नहीं?*

> हिंदुस्तान का इतिहास बहुत लंबा चौड़ा है ही - काल और देश दोनों के ख्याल से हमारी बेवकूफियों की लिस्ट उसी तरह बहुत लंबी-चौड़ी है. अंधी राष्ट्रीयता और उसके पैगम्बरों ने हमें भूत के प्रति अत्यंत भक्ति पैदा कर दी है.

इसमें संदेह भी नहीं कि उनका हर बात में 'कानून' की शरण ढूंढना अच्छा तो नहीं है. यह कठिन ही नहीं किंतु असंभव तक है, कि हम इस बात को भूल जाएँ कि हमारे शासक देशी नहीं हैं और वे हमारी बातों को अच्छी तरह नहीं समझ सकते. उस समय तक जब तक वंश का शासन देशवालों ही के हाथ में नहीं आ जाता, या वर्तमान शासन का रूप इतना मृदुल नहीं हो जाता कि उसे हम जातीय शासन के नाम से पुकार सके, तब तक जातीय सुधार के काम में कानून का सब रूपों में हस्तक्षेप अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जा सकता. हमारे इन शब्दों का यह मतलब नहीं कि जातीय सुधार में कानून की सहायता की बिल्कुल आवश्यकता है परंतु बहुत सोच-विचार के पश्चात जातीय सुधार के काम में शासकों के हस्तक्षेप की प्रायः उस समय तक आवश्यकता नहीं, जब तक उनका और जाति का स्वार्थ एक नहीं हो जाता.

सुधारकों की दूसरी भूल इससे भी भयंकर है. वे सुधार नहीं कर रहे, नकल कर रहे हैं. उनके कामों और उनकी बातों से कुछ भी पता नहीं चलता कि वे नकल करना भी कभी छोड़ेंगे या नहीं? पराधीनता की घटा देश पर छाई है, हृदय के प्रकाश तक पर उसने अंधेरा कर दिया है. सुशिक्षित-सुधारक दल इस मानसिक अंधकार मानसिक पराधीनता का प्रकाशमान उदाहरण है. कोई यह नहीं कहता कि तुम आधुनिक सभ्यता के उत्तम फलों को न चखो. परन्तु आधुनिक सभ्यता के केंद्रों में आग लग रही है और उस पर विचार करना और उसके बुरे असर से अपनी रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है. जबर्दस्त लहर के सामने कमजोर पौधों की क्या हकीकत जो अपने पैरों पर खड़े रहें. भयंकर तूफान ने बड़े-बड़े वृक्षों के सिर नीचे कर दिए तो पराधीनता के वायुमंडल में पलने वाले वृक्षों की क्या मजाल कि जो सीधे तने रहें? जिन सुधारकों में इतना भी चरित्र-बल नहीं कि वे उसकी उज्ज्वलता का सिक्का अपने देश वालों के हृदयों पर जमा सकें, जिनमें सत्य के लिए लोगों का अत्याचार सहने की शक्ति नहीं, जिनमें इतना प्रेम का भाव नहीं कि वे उसके बल से अपने कट्टर से कट्टर शत्रु को जीत लें, वे एक क्षण भी इसी बढ़ती हुई लहर के सामने कैसे टिक सकते हैं?

जिसने विलासिता में न बहकर संसार की सेवा का दृढ प्रण किया तो वही आत्मा आधुनिक सभ्यता के उस बुरे प्रभाव का मुकाबला कर सकेगी. जो प्रेम, उपकार, कर्तव्य और उदारता के उच्च भावों को सख्त धक्का पहुंचा, बात-बात में कानून की शरण ढूंढने तथा हर बात में बिना सोचे-विचारे नकल करते हैं, ऐसे लोगों से संसार का विशेष उपकार नहीं हो सकता. भले ही वे अपने को सुधारक कहें, परंतु यथार्थ में वे केवल स्वरचित 'सुधार के ठेकेदार' हैं और उनमे सबसे पहले सुधार होने की आवश्यकता है.

पुराने वक्त की बातों को छोड़ दीजिए. मैंने अपनी आँखों से ऐसे कुछ आदमियों को देखा है कि जिनमें कुछ मर गए हैं और कुछ अभी तक जिंदा हैं. उनका भीतरी जीवन कितना घृणित, स्वार्थपूर्ण और असयंत था. लेकिन बाहर भक्त लोग उनके दर्शन सुमधुर आलाप से अपने को अहोभाग्य समझने लगते थे. नजदीक से देखिये यह धार्मिक महात्माओं के मठ और आश्रम ढोंग के प्रचार के लिए खुली पाठशालाएँ हैं और धर्म प्रचार क्यों पूरे सौ सैकड़े नफे का रोजगार है. अधिकांश लोग इसमें अपने व्यवसाय के ख्याल से जुटे हुए हैं. अयोध्या में एक महात्मा थे उनसे रामजी ने प्रसन्न हुए कि उन्होंने बैकुण्ठ से आकर उनका पाणिग्रहण किया. वे पहले पुरुष थे और भगवान की कृपा से वह उनकी प्रियतम के रूप में परिवर्तित कर दिए गए. रामजी के लिए क्या मुश्किल है? जब पत्थर मनुष्य के रूप में बदल सकता है तो पुरुष को स्त्री के रूप में बदल देना कौन सी बड़ी बात? ऐसा-ऐसा परिवर्तन तो आजकल भी अनायास कितनी बार देखा गया है.

एक नया मत इधर ५०-६० वर्ष से चला है. वह दुनिया भर की सारी बेबकूफियों, भूतप्रेत, जादूमंतर को सबको विज्ञान से सिद्ध करने के लिए तुला हुआ है. बेबकूफ हिंदुस्तानी समझते हैं कि ऑक्सफोर्ड और केब्रिज से गदहे नहीं निकलते हैं और सभी जेक और जानसन साइंस छोड़कर दूसरी बात नहीं करते हैं. इन अधकचरे पंडितों ने अपने अधूरे ज्ञान के आधार पर भूत-प्रेत, देवी-देवता, साधु-पूजा सबको तीस बरस पहले निकले वैज्ञानिक सिद्धांतों से सिद्ध करना शुरू किया. हालाकि उन सिद्धांतों में अब ७५ फीसदी गलत साबित हो रहे हैं, लेकिन अभी अंधे भक्तों के लिए कुछ पुराने विज्ञान के पुट से तैयार किए गए ग्रंथ ब्रह्मवाक्य बन गये हैं.

हिंदुस्तान का इतिहास बहुत लंबा चौड़ा है ही - काल और देश दोनों के ख्याल से हमारी बेवकूफियों की लिस्ट उसी तरह बहुत लंबी-चौड़ी है. अंधी राष्ट्रीयता और उसके पैगम्बरों ने हमें भूत के प्रति अत्यंत भक्ति पैदा कर दी है. और फिर हमारी उन मूर्खताओं के पोषण के लिए सड़ी-गली विज्ञान की थियोरिया और दिवालिए श्वेतांग तैयार ही हैं. फिर क्यों न हम अपनी अकल बेच खाने के लिए तैयार हो

जाएँ? जिनके यहां वायुयान भी नहीं, काठ के घोड़े भी आकाश में उड़ते हों, जिनके यहां बारूद और आग्नेयास्त्र ही नहीं मुख से निकलती हुयी ज्वाला में करोड़ों शत्रु एक क्षण में जल कर राख हो जाते हों, जिनके सूक्ष्म दार्शनिक विवेचनाओं और आत्मवंचनाओं को सुनकर आज भी दुनियां दंग हो जाए. वह भला किसी बात को झूठा लिख सकता है. तिपाई पर भूत उडाना मेसमेरिज्म, हैप्नाटिज्म आदि के द्वारा पहले वैज्ञानिक ढंग से हमें अपनी विस्मृत होती जाती बेवकूफियों के पास ले जाया गया और अब तो विज्ञान परितोषिक विजेता लोग सरे मैदान हरसू राम और हरिराम ब्रम्हा की विभूति बांट रहे हैं.

आखिर जब नोबेल पुरुस्कार विजेता आलियवर लाज भूत-प्रेतों पर पुस्तकें लिख रहा है और कसम खाकर लोगों में उनका प्रचार कर रहा है. तो हमारे इन स्वदेशी भाइयों का कसूर ही क्या?

अभी तक शिक्षित लोग पलीत ज्योतिष को झूठ समझते थे, लेकिन अब उसके भी काफी से अधिक हिमायती हो चले हैं. वह इसे पक्का विज्ञान मानते हैं. ज्योतिषि की भविष्यवाणी को छापने के लिए हमारे अखबार एक-दूसरे को होड़ लगा रहे है.

हम लोगों के मिथ्या विश्वास क्या एक-दो हैं कि जिन्हें एक छोटे से लेख में लिखा जा सके? हमारे यहां तो इसके मिसिल के मिसिल और फाइल के फाइल तैयार हैं और तारीफ यह है कि इन बेवकूफियों के भारी भरकम बोझ को सिर पर लादे हुए हमारे नेता लोग समुंदर पार कर जाना चाहते हैं. उन्हें पूरा विश्वास है कि बैकुंठ के भगवान, आकाश के नवग्रह और पृथ्वी के ज्योतिषी और ओझा-सयाने उनकी यात्रा में जरूर कुछ हाथ बँटाएंगे .

हमारी जाति-पांति की व्यवस्था को ही ले लीजिए. यह हमारे ऋषि-मुनियों के उन बड़े आविष्कारों में हैं जिनपर हमें बड़ा अभिमान है. राष्ट्रीय भावनाओं की जागृति के साथ-साथ यद्यपि कुछ इने-गिने नेता लोग जाति-पाँति के खिलाफ बोलने लगे हैं, लेकिन अब भी हमारे उच्चकोटि के नेताओं का अधिकांश भाग अपने ऋषियों की इस अद्‌भुत कृति की कद्र करने को तैयार हैं. नेताओं ने देख लिया है कि यह जाति-पाँति आपस के फूट, भेदभाव के बढ़ाने का एक सबसे बड़ा कारण बन रहा है. कुछ साल पहले तो भीतर-भीतर जातीय संगठन भी इन्होंने कर रखा था और अब भी बहुतों को उसे छोड़ने में मोह लगता है.

शुद्ध राष्ट्रीयता तब तक आ ही नहीं सकती है जब तक आप जाति-पाँति तोड़ने पर तैयार न हों. अगर आप जाति-पाँति तोड़े हुए नहीं हैं तो आपका वास्तविक संसार आपकी जाति के भीतर है. बारहवालों साथ तो सिर्फ काम चलाऊ समझौता है. जब आप किसी पद पर पहुंचेंगे तो ईमानदार रहने पर आपकी राय को प्रभावित करने में सफलता सबसे अधिक आप के जाति भाईयों की होगी. नौकरी, चाकरी दिलाने, कमेटी, सब कमेटी में भेजने और सिफारिशी चिट्ठी लिखने में मजबूर आपको अपनी जाति का ख्याल करना होगा. आदमी के दिल में हजारों कोटरियाँ जरूर हैं, लेकिन वहां ऐसी फर्क-फर्क कोठरियाँ नहीं हैं जिनमें एक में जाति-पाँति का भाव पड़ा रहे और दूसरे में उससे अछूती राष्ट्रीयता बनी रहे. जैसे किसानों के आंदोलन में आने वाले समझदार आदमियों को पहले ही से तैयार होकर आना चाहिए कि उन्हें साम्यवाद में पैर रखना है, वैसे ही राष्ट्रीयता के पथ पर पैर रखने वालों को भी समझना चाहिए कि उन्हे जाति-पाँति की दीवारों को तोड़ गिराना होगा. यदि कोई आदमी राष्ट्रीय नेता रहना चाहता है तो या तो वह ईमानदार नहीं रहेगा या उसे असफल होकर रहना पड़ेगा. अपनी जाति के साथ घनिष्ठता रखकर कैसे दूसरी जाति का विश्वासपात्र कोई हो सकता है? मंत्रियों को तो खास तौर से सावधान रहना पड़ेगा. क्योंकि जाति भाईयों की घनिष्ठता उन्हें आसानी से बदनाम कर सकती है. मेरी समझ में प्रांत के लिए, राष्ट्र के लिए और व्यक्तिगत तौर से नेताओं के लिए अच्छा यही है कि हरेक प्रधान नेता तुरंत से तुरंत अपने लड़के-लड़कियों, भतीजे-भतीजियों अथवा भांजा-भांजियों या नाती-नतनियों में से कम से कम एक की शादी जाति-पाँति तोड़कर दिखला दे जैसा कि महात्मा गाँधीजी तथा राजगोपालाचारी ने करके दिखाया .

> “आँख मूँदकर हमें समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए. हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्दी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार होना चाहिए.”

आँख मूँदकर हमें समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए. हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्दी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार होना चाहिए. बाहरी क्रांति से कहीं ज्यादा जरूरत मानसिक क्रांति की है. हमें दहिने-बाएं, आगे-पीछे दोनों हाथ नंगी तलवार नचाते हुए अपनी सभी रूढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना चाहिए. क्रांति प्रचण्ड आग है, वह गांव के एक झोपड़े को जलाकर चली नहीं जाएगी. वह उसके कच्चे-पक्के सभी घरों को जलाकर खाक कर देगी और हमें नए सिरे से नए महल बनाने के लिए नींव डालनी पड़ेगी.■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजबेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्वुन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

शिव संकल्प सूक्त

(यजुर्वेद अध्याय ३४ मंत्र १ से ६)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु.
दूर जाता जागरण में जो बहुत
और उतना ही चला करता
जब सब सुप्त रहते
ज्योतियों में ज्योति जो है एक
वही मेरा मन
सदा शिव संकल्पकारी हो.

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे
कृण्वन्ति विदथेषु धीराः
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु.
कर्म में होते निरत जिससे मनीषी
व्रती का संकल्प पूरा कराता जो
यज्ञ में बन शक्ति अद्भुद् जो प्रतिष्ठित
वही मेरा मन
सदा शिव संकल्पकारी हो.

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु.
ज्ञानमय, विज्ञानमय, धृतिशील
सब प्राणियों में जो रहा करता
है तेज बनकर
नहीं किंचित् कर्म होता बिना जिसके
वही मेरा मन
सदा शिव संकल्पकारी हो.

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम्
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु.
शाश्वत, भूत, सतत वह जो
अमृतवत् सबकुछ संजोता
हविर्दाता सात रूपों में
जगत विस्तार करता
वही मेरा मन
सदा शिव संकल्पकारी हो.

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु.
अरे जैसे चक्र में रथ के हुआ करते
साम, ऋक्, यजु में प्रतिष्ठित वह
प्राणियों के चित्त ओत प्रोत जिससे
वही मेरा मन
सदा शिव संकल्पकारी हो.

सुसारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु.
सारथी रथ की कुशल वल्गा लिए
नियंत्रित गतिशील कर ज्यों अश्वदल
अथक् द्रुत जो
प्रणियों के हृदय स्थित
वही मेरा मन
सदा शिव संकल्पकारी हो.

गीता-सार

गीता के ये श्लोक **प्रो. अनिल विद्यालंकार** (sandhaan@airtelmail.in) द्वारा रचित गीता-सार से लिए जा रहे हैं, जिसमें गीता के मुख्य विषयों पर कुल १५० श्लोक संगृहीत हैं.

विषय : ज्ञान और ज्ञानी

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रम् इत्यभिधीयते।
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति भारत।।

गीता १३-१

हे अर्जुन, इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है और जो इस क्षेत्र को जानता है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं.

अपने अंदर देखने पर हम पाते हैं कि हमारे अंदर कोई तत्त्व है जो हमारा अपना मूल आपा (आत्मा) है और कुछ अन्य तत्त्व हैं जो हमारे साथ निकटता से जुड़े हुए हैं पर वे हमारी आत्मा के आवश्यक अंग नहीं हैं. हमारी आत्मा अपने से भिन्न इन दूसरे तत्त्वों का नियंत्रण करती है. अपना हाथ उठाने की इच्छा करने पर हम वैसा कर सकते हैं. यहाँ हमारी आत्मा हाथ का संचालन कर रही है. इस श्लोक में आत्मा से भिन्न अंश को क्षेत्र कहा गया है. हमारा शरीर वह क्षेत्र है जिससे हम सदा घिरे हुए हैं. शरीर का संचालन करनेवाले तत्त्व को क्षेत्रज्ञ अर्थात् क्षेत्र का जाननेवाला कहते हैं. इस प्रकार हमारा सारा जीवन आत्मा और आत्मा से भिन्न तत्त्वों के बीच चलनेवाली प्रक्रिया है. आत्मा अपने से भिन्न तत्त्वों पर क्रिया करती है, उसका परिणाम देखती है, फिर कुछ और क्रिया करती है. इस प्रकार जीवन का प्रवाह चलता रहता है.

कौन्तेय : हे अर्जुन, **इदं शरीरं** : यह शरीर, **क्षेत्रम् इति अभिधीयते** : क्षेत्र कहा जाता है, **भारत** : हे अर्जुन, **एतद् यः वेत्ति** : जो इस क्षेत्र को जानता है, **तं क्षेत्रज्ञ इति प्राहुः** : उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं.

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः।।

गीता १३-५

पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त मूल प्रकृति, ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन, और पाँच इन्द्रियों से संबंधित पाँच सूक्ष्म भूत (जारी)

अनात्म या क्षेत्र कोई समरस चीज़ नहीं है. इसमें कुछ तत्त्व समझे जा सकते हैं. यहाँ दिया गया वर्णन सांख्य दर्शन पर आधारित है. जैसा कि भूमिका में कहा गया है, संसार की उत्पत्ति का कारण पुरुष और प्रकृति का संयोग है. मूल प्रकृति सदा अव्यक्त रहती है. हम इसे प्रत्यक्ष नहीं देख सकते. उसके बाद बुद्धि या महत् तत्त्व का जन्म होता है. इस अवस्था पर प्राणियों में कोई भेद नहीं होता. बुद्धि सभी प्राणियों के लिए एक है. बुद्धि के बाद अहंकार का जन्म होता है जिसके कारण प्राणियों में अलगाव का और मेरा-तेरा का भाव आता है. बाद में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन आते हैं जिन्हें मिलाकर ग्यारह इन्द्रियाँ कहा जाता है. उसके बाद इन्द्रियों के विषय के रूप में पाँच सूक्ष्मभूत और सबसे बाद में पाँच महाभूत आते हैं.

महाभूतानि : पाँच महाभूत, **अहंकार** : अहंकार, **बुद्धिः** : बुद्धि, **अव्यक्तं** : अव्यक्त मूल प्रकृति, **इन्द्रियाणि दशैकं च** : और ग्यारह इन्द्रियाँ, **पंच च इन्द्रियगोचराः** : और पाँच तन्मात्राएँ.

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं, संघातश्चेतना धृतिः।
एतत् क्षेत्रं समासेन, सविकारम् उदाहृतम्।।

गीता १३-६

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, (शरीर का समूह, चेतना और स्थिरता का तत्त्व, यह विकारों के साथ क्षेत्र का संक्षेप में वर्णन है.

पत्थर में न तो इच्छा होती है न द्वेष, इसलिए उसे न सुख होता है न दुःख. न ही पत्थर अपने रूप को बनाए रखना चाहता है, जबकि ये अनुभूतियाँ ही जीवित प्राणियों की पहचान हैं और उनके जीवन का मूल तत्त्व हैं. किन्तु हम अपनी इच्छा से कोई अनुभूति अपने अंदर नहीं जगा सकते. हमसे ऊपर की कोई शक्ति हमारी अनुभूतियाँ उत्पन्न करती है. हमारे अंदर उठने वाली सभी अनुभूतियाँ हमारे अन्दर विद्यमान पुरुष (विश्व चैतन्य) की झलक हैं. अनुभूतियों के आधार पर ही हमारा जीवन चलता है. इस प्रकार हमारे जीवन की सभी गतिविधियाँ पुरुष और प्रकृति के द्वारा की जा रही हैं. हमारे अंदर किस समय कौन-सी अनुभूति उठेगी यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस समय हमारे अंदर किस प्रकार का अहंकार, मन और इंद्रिय-ज्ञान सक्रिय है.

इच्छा, द्वेषः - इच्छा और द्वेष, **सुखं दुःखं** : सुख और दुःख, **संघातः** : शरीर का समूह, **चेतना** : चेतना, और **धृतिः** : स्थिरता, **एतत् क्षेत्रं** : यह क्षेत्र, **सविकारं** : विकारों के साथ, **समासेन** : संक्षेप में, **उदाहृतं** : वर्णित किया गया है.

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं, यत् तज् ज्ञानं मतं मम।।

गीता १३-२

हे अर्जुन, सभी क्षेत्रों में तू मुझे ही क्षेत्रज्ञ जान. क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का यह जो ज्ञान है वही मेरे मत से सच्चा ज्ञान है.

यदि हमें लगता है कि हमारी आत्मा दूसरों की आत्मा से अलग है तो यह इस कारण है कि हम अपनी आत्मा को उसके क्षेत्र अर्थात् अपने शरीर, इन्द्रियों, मन और अहंकार से जोड़कर देख रहे हैं. पर यदि हम अपनी आत्मा को इन सबसे अलग करके देखें तो अपनी आत्मा को पहचानने का और किसी और की आत्मा से अपनी आत्मा को अलग करके देखने का कोई आधार हमारे पास नहीं होगा. जैसा कि इस श्लोक में कहा गया है, सभी क्षेत्रों में परमात्मा ही एकमात्र क्षेत्रज्ञ है. दूसरे शब्दों में वही विश्व चैतन्य सभी प्राणियों के सभी शरीरों में अपने आप को अभिव्यक्त कर रहा है. जब कोई भी व्यक्ति अपनी आत्मा को सही रूप में जानने का प्रयास करेगा तो उसे अपनी आत्मा के रूप में परमात्मा ही मिलेगा.

भारत : हे अर्जुन, **सर्वक्षेत्रेषु च** : सभी क्षेत्रों में, **क्षेत्रज्ञम् अपि** : क्षेत्रज्ञ के रूप में भी, **मां विद्धि** : मुझे जान, **क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः यत् ज्ञानं** : क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का यह जो ज्ञान है, **तत् ज्ञानं** : वह सच्चा ज्ञान है, **मम मतं** : यह मेरा मत है.■

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

घेवर खाने से अंधा हुआ ब्राह्मण

किसी नगर में यज्ञदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था. उसकी घरवाली का चाल-चलन अच्छा नहीं था. वह एक दूसरे आदमी से फंसी हुई थी. अपने घरवाले से आंख बचाकर वह अपने यार को घेवर बनाकर खिलाया करती थी. एक दिन उसके पति ने उसे घेवर बनाते देख लिया. उसने अपनी घरवाली से पूछा, 'प्रिये, यह क्या बना रही हो? रोज घेवर बनाकर तुम किसके लिए ले जाया करती हो. आज तुम सारी बात साफ-साफ बता दो.'

उसकी बीबी चालू तो थी ही, बोली, 'मैं देवी का व्रत कर रही हूं. ये पकवान बनाकर मैं देवी के मंदिर में चढ़ाने के लिए ले जाया करती हूं.'

ब्राह्मणी अपने पति को भरमाने के लिए उसी समय पकवान लेकर देवी के मंदिर की ओर चल पड़ी. मंदिर में पहुंचकर पकवान मंदिर में ही रखकर वह नहाने चली गई. जिस समय वह नहाने गई हुई थी, ठीक उसी समय उसका पति चुपके से आकर देवी की प्रतिमा के पीछे खड़ा हो गया.

स्नान से लौट कर वह चंदन, धूप और फूलों से देवी की पूजा करने लगी. पूजा के बाद उसने देवी को प्रणाम किया और पूछा, 'देवी मां, मैं क्या करूं कि मेरा पति अंधा हो जाए?'

> *एक दिन वह घर में इसी तरह घुस रहा था कि वह उस ब्राह्मण के करीब से गुजरा. अब क्या था. उसने उसकी चुटिया पकड़ ली और डंडे और लात घूंसे से इतना मारा कि उसकी जान ही चली गई. फिर उसने अपनी घरवाली की नाक काट डाली और उसे अपने घर से निकाल बाहर किया.*

स्त्री की प्रार्थना सुनकर ब्राह्मण ने आवाज बदलकर कहा, 'यदि तू रोज घेवर बनाकर अपने पति को खिलाती रहे तो वह बहुत जल्द अंधा हो जाएगा.'

उस नासपीटी को यह तो पता चला नहीं कि मामला क्या है. उस दिन के बाद से वह अपने पति को घेवर और पकवान खिलाने लगी. कुछ दिनों के बाद उसके पति ने कहा, 'सुनती हो, जाने क्या हो गया है, मुझे कुछ सूझ ही नहीं रहा है.'

उसकी घरवाली की खुशी का तो कोई अंत ही नहीं था. उसने सोचा, अब तो मैं बेरोक-टोक अपने यार से मिल सकती हूं. इसे दिखाई तो कुछ देता नहीं. इसे पता भी क्या चलेगा और यदि पता चल भी गया तो यह मेरा बिगाड़ क्या सकता है.

अब वह अपने यार को रोज अपने ही घर में बुलाने लगी. उसे भी अब कोई डर तो था नहीं, बेधड़क आने लगा. एक दिन वह घर में इसी तरह घुस रहा था कि वह उस ब्राह्मण के करीब से गुजरा. अब क्या था. उसने उसकी चुटिया पकड़ ली और डंडे और लात घूंसे से इतना मारा कि उसकी जान ही चली गई. फिर उसने अपनी घरवाली की नाक काट डाली और उसे अपने घर से निकाल बाहर किया.

कहानी सुनाकर मंदवष ने कहा, 'इसीलिए मैं कह रहा था कि मैं जानता तो सब कुछ हूं कि मैं मेढ़कों को अपनी पीठ पर क्यों लादे हुआ हूं, पर मैं भी उसी ब्राह्मण की तरह मौका देख रहा हूं.'

यह कहानी सुनाकर मंदविष इतना पुलकित हो गया कि फिर उसी बात को दुहराने लगा कि तरह-तरह के स्वाद वाले ये मेढ़क बहुत दिनों तक मेरे काम आते रहेंगे. वह इतना विभोर होकर यह वाक्या दुहरा रहा था कि इसे जलपाद ने भी सुन लिया पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया. हां, उसने इतना समझ लिया कि दाल में कुछ काला जरूर है. चिंतित होकर उसने मंदविष से पूछा, 'अजी! अभी तुम जो कुछ कह रहे थे उसका मतलब मेरी समझ में आया नहीं.'

सांप ने अपने इरादे पर परदा डालते हुए कहा, 'जनाब! मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा जो आपकी शान के खिलाफ हो.' जलपाद ने उसके कहे पर विश्वास कर लिया. उसे तनिक भी

संदेह नहीं हुआ कि अभी इन दोनों के बीच कोई गहरी बात हुई है. वह उस सांप की सवारी गांठता रहा और उसी तरह हंसता-बोलता रहा जैसे पहले करता था. एक-एक करके वह सभी मेढ़कों को चट कर गया. अंत में वह उस राजा को भी खा गया. न रहे मेढ़क न मेढ़ की जाति.

यह कहानी सुनाकर स्थिरजीवी ने कहा, 'महाराज, इसीलिए मैं कह रहा था कि ऐसा मौका भी आता है जब अपने शत्रुओं को भी अपनी पीठ पर चढ़ाना पड़ता है.'

फिर वह बोला, 'महाराज, जैसे मंदविष ने अपनी पीठ पर चढ़ाकर मेढ़कों का सफाया कर दिया उसी तरह मैंने भी अपने दुश्मनों का सफाया कर दिया. ठीक ही कहा है कि दावाग्नि चाहे कितनी भी प्रबल क्यों न हो वह पेड़ों को तो जला डालती है, पर उनकी जड़ों को नहीं जला पाती. पर मीठी-मीठी हवा सुलगा-सुलगा कर जड़ों को भी नष्ट कर देती है."

मेघवर्ण ने कहा, 'ताऊ, आप की बात बारह माशे आठ रत्ती सही है. लाख रुकावटें आएं महान लोग जो काम छेड़ देते हैं उसे पूरा करके ही रहते हैं. कहते हैं महान पुरुषों की शोभा उनकी यह नीति ही है कि वे कोई काम शुरू करके अधूरा नहीं छोड़ते. आपने तो अपनी बुद्धि के बल पर मेरे राज्य को निष्कंचक कर दिया. कूटनीति जानने वाले के लिए यह उचित ही है. कहते हैं, जो कर्ज, आग, शत्रु और बीमारी इन चारों को पूरी तरह खत्म किए बिना चैन से नहीं बैठते, उसको बाद में नहीं रोना पड़ता.'

उसने कहा, 'महाराज, भाग्यवान तो आप हैं. आप जो भी काम शुरू करते हैं वह पूरा होकर ही रहता है. कोई काम केवल ताकत के बल पर पूरा नहीं होता. सोच-विचारकर किया जाने वाला काम ही पूरा हो पाता है. कहते हैं, शस्त्र का मारा हुआ शत्रु जड़-मूड़ से नहीं मिटता परंतु बुद्धि के मारे हुए जड़ से मिट जाते हैं. शस्त्र से तो केवल शरीर का ही अंत होता है परंतु बुद्धि से तो शत्रु के कुल, यश और धन-दौलत सभी का नाश हो जाता है. इसलिए बुद्धि और पराक्रम दोनों के मेल से ही काम सधते हैं.'

जिस आदमी का भाग्य साथ देता है और अच्छे दिन देखने होते हैं उसकी बुद्धि अपने आप अच्छे काम में लग जाती है. उसकी याददाश्त बढ़ जाती है. उसकी कामनाएं स्वयं पूरी होने लगती हैं. वह जो कुछ सोचता है वह निष्फल नहीं जाता. उसके मन में तर्क स्वयं फूटने लगते हैं. उसका चित्त सदा प्रसन्नता और विश्वास से भरा रहता है और उसका मन ऐसे कामों में लगता है जिसे देखकर दुनिया उसकी सराहना करे.

और फिर राज्य तो उसे ही मिलता है जिसमें नीतिज्ञता हो, त्याग हो और शौर्य हो. क्योंकि मनुष्य त्यागियों, वीरों और विद्वानों के साथ से ही गुणी बनता है और गुणी व्यक्ति को ही धन मिलता है. धन से ही श्री मिलती है और श्री से लोग उसकी बात नहीं टालते और जब सभी लोग किसी का कहा मानने लगे तो राज्य तो उसे मिला ही हुआ है.

मेघवर्ण ने कहा, 'यह तो मैंने अपनी आंखों देख लिया कि नीतिशास्त्र का नतीजा तुरत सामने आता है. नीति के बल पर ही आपने मेरे शत्रु अरिमर्दन का मन जीत लिया और उसके भेदों को जानकर उसको धूल में मिला दिया.'

स्थिरजीवी ने कहा 'जिन कामों को युद्ध आदि के उग्र उपायों से ही किया जाता है उनमें भी पहले नरमी से काम लेना अच्छा रहता है. वन में जाकर किसी विशाल वृक्ष को काटते समय पहले उसकी वंदना की जाती है.'

महाराज, ऐसी सलाह से क्या फायदा जिसे अमल में न लाया जा सके या जिसके अनुसार काम करने के बाद दुख ही मिले, सुख की आशा तक पैदा न हो.

यह बात तो कुछ सोच-विचार कर ही कही गई है कि तुनुकमिजाज, निकम्मे, मीन मेख निकालने वाले लोगों की बात जब झूठी साबित होती है तो लोग उनकी निंदा करते और खिल्ली उड़ाते हैं.

इसलिए बुद्धिमान व्यक्तियों को मामूली से मामूली काम की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए. कारण यह है कि जो आलसी या प्रमादी लोग यह तो मेरे लिए कुछ है ही नहीं, यह तो मेरे बाएं हाथ का खेल है, इसे करने में क्या है, इस पर इतना ध्यान देने की क्या बात हैं, आदि बातें कह कर किसी काम को करने के समय लापरवाही बरतते हैं वे काम न हो पाने पर या उसके चौपट हो जाने पर उसी तरह दुखी होते हैं जैसे कोई आफत आने पर दुखी हो और पछताए.

अभी तक तो महाराज को न रातों को नींद आती थी न दिन को चैन मिलता था. अब आप फिर पहले की तरह चैन से सो सकेंगे. कहते हैं, आदमी उसी घर में चैन की नींद सो

> *राज्य के मद में आप कभी इस भ्रम में न पड़ जाइएगा कि मैं तो राजा हूं मेरा कोई क्या बिगाड़ लेगा. कारण राजा के वैभव का कोई ठिकाना नहीं. जैसे बांस पर चढ़ना कठिन होता है पर फिसल कर गिरते देर नहीं लगती, उसी तरह राज्यलक्ष्मी का उत्कर्ष भी भरोसे का नहीं होता, यह कभी भी लुढ़ककर नीचे आ सकती है.*

सकता है जिसमें या तो सांप न रहता हो या रहता भी रहा हो तो मार डाला गया हो. यदि सांप एक बार दिखाई पड़ कर ओझल हो गया हो तो उस घर में कोई सुख से सो नहीं सकता.

पराक्रमी और साहसी लोग तब तक शांति और सुख से नहीं रह पाते जब तक ऐसा कोई काम नहीं कर लेते हैं जिसके लिए बड़ों और दुआओं और शुभकामनाओं की चाह की जाती है, जिसे सिद्ध करने में नीति, साहस, धीरज आदि से काम लेना पड़ता है, जिसे पूरा करने की प्रबल लालसा मन में बनी होती है.

महाराज, मैंने जिस काम में हाथ डाला था उसे पूरा कर लेने के बाद मुझे भी बड़ी तसल्ली हुई है. अब आप बिना किसी विघ्न-बाधा के, प्रजा की भलाई करते हुए, अपने वंशागत राज्य का सभी वैभवों के साथ उपभोग कीजिए. कहते हैं, जो राजा सदाचारी नहीं होता और सुरक्षा आदि का प्रबंध करके अपनी प्रजा को प्रसन्न नहीं रखता उसका गद्दी पर बैठना बकरी के गले के स्तन की तरह बेकार होता है.

इसी तरह जो राजा गुणों का सम्मान करता है, व्यसनों से बचकर रहता है, अच्छे कर्मचारियों को प्रेम करता और आदर देता है, वही सभी सुख-ऐश्वर्यों का लंबे समय तक भोग करता है.

राज्य के मद में आप कभी इस भ्रम में न पड़ जाइएगा कि मैं तो राजा हूं मेरा कोई क्या बिगाड़ लेगा. कारण राजा के वैभव का कोई ठिकाना नहीं. जैसे बांस पर चढ़ना कठिन होता है पर फिसल कर गिरते देर नहीं लगती, उसी तरह राज्यलक्ष्मी का उत्कर्ष भी भरोसे का नहीं होता, यह कभी भी लुढ़ककर नीचे आ सकती है. पारे की बूंदों की तरह यह पकड़ में नहीं आती और इसका जितना भी ध्यान रखा जाए, यह सदा किसी न किसी के पास जाने को तैयार और अपने वियोग में तड़पाने के लिए बेचैन रहती है. यह बानरों की तरह चंचल और तुनुकमिजाज होती है, कमल के पत्ते पर पड़े जल की तरह छूते ही ढरक जाती है, वायु की गति की तरह चंचल और दुष्टों की संगति की तरह अस्थायी होती है. इसका असर जिस पर हो गया उसको होश में लाना उतना ही कठिन होता है जैसे सांप के विष का इलाज. यह जल के बुदबुदे की तरह क्षणिक होती है और सपने में पाए हुए धन की तरह तत्काल नष्ट हो जाती है.

राज्याभिषेक होते ही राजा को एक ओर तो तरह-तरह की विपत्तियों से निपटना होता है दूसरी ओर अपनी लालसाएं पूरी करने के लिए तरह-तरह की ऐय्याशी के सामान जुटाने में भी उसका दिमाग लगा रहता है. राजा के अभिषेक वाले घट उसके ऊपर जल नहीं विपत्तियों की बरसात करते हैं.

कोई भी स्थान ऐसा नहीं जहां विपत्तियां न पहुंच जाएं. कोई भी विषय ऐसा नहीं है जहां उनका सामना न करना पड़ जाए. राम के वनवास, बलि के बंधन, पांडवों के वनगमन,

इस दुनिया में किसी चीज का कोई ठिकाना है! कहां गए राजा दशरथ जो इंद्र के साथ उनके सिंहासन पर बैठा करते थे? कहां गए सगर जिन्होंने समुद्र तक की मर्यादा नियत की थी? राजा वैन्य जिसका जन्म ही हथेलियां रगड़ने से हुआ था, कहां चले गए? साक्षात् सूर्य के पुत्र मनु कहां गए?

नल के राज्य निर्वासन, अर्जुन के नृत्य का अध्यापक और रावण के पतन को देखकर यही लगता है कि कोई ऐसा नहीं है जिसके दिन फिर जाएँ तो उसे विपत्तियों का सामना न करना पड़े.

इस दुनिया में किसी चीज का कोई ठिकाना है! कहां गए राजा दशरथ जो इंद्र के साथ उनके सिंहासन पर बैठा करते थे? कहां गए सगर जिन्होंने समुद्र तक की मर्यादा नियत की थी? राजा वैन्य जिसका जन्म ही हथेलियां रगड़ने से हुआ था, कहां चले गए? साक्षात् सूर्य के पुत्र मनु कहां गए? इन महापुरुषों की नियति को देखकर यही लगता है कि काल ही सबको समय पर जगाता है और वही सभी को सुला देता है. काल ही सबकी कीर्ति बढ़ाता है और समय आने पर वही इसे मिटा भी देता है.

ऐसा न होता तो मांधाता जिन्होंने तीनों लोकों पर विजय पाई थी उनका भला अता-पता न चलता? देवताओं के राजा बनने का सपना देखने वाले नहुष की भला वैसी गति होती? योगिराज कृष्ण को हत्या का शिकार होना पड़ता? जिस पर नजर डालो, एक ही बात सिद्ध होती है कि समय ही किसी को महान और बलवान बनाता है और वही उसे नष्ट भी कर डालता है.

वे राजा, वे सचिव, वे सुंदरियां, वे सुंदर उद्यान और उपवन कहां रहे. आज तो उनकी याद भर रह गई है. काल की गति ही कुछ ऐसी है कि एक दिन आएगा जब यह याद भी मिट जाएगी.

इसलिए मैं आप को बार-बार यही सलाह देता हूं कि आप हाथी के कानों जैसी चंचल इस राज्यलक्ष्मी को पाकर बिना गर्व-गुमान के, न्यायपूर्वक राज्य का उपभोग करें और प्रजा की भलाई में ही लगे रहें.■

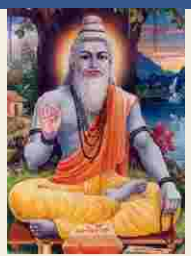

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

आशीर्वाद-प्राप्ति

सब लोग इसी की राह देख रहे थे कि कब युद्ध शुरू हो, पर एकाएक पांडव-सेना के बीच में हलचल मच गई. देखते क्या हैं कि धर्मराज युधिष्ठिर ने अचानक अपना कवच और धनुष-बाण उतारकर रथ पर रख दिया है और रथ से उतरकर हाथ जोड़े कौरव सेना की हथियार बंद सैनिक पंक्तियों को चीरते हुए भीष्म की ओर पैदल जा रहे हैं. बिना सूचना दिये उनको इस प्रकार जाते देखकर दोनों ही पक्षवाले अचंभे में आ गये.

अर्जुन तुरंत रथ से कूद पड़ा और युधिष्ठिर के पीछे कौरव-सेना में घुस गया. दूसरे, पांडव और श्रीकृष्ण भी उनके साथ ही हो लिये. उन्हें यह डर हो रहा था कि अपनी स्वाभाविक शांतिप्रियता के आवेश में युधिष्ठिर कहीं इस घड़ी युद्ध न करने की या युद्ध बंद करने की न ठान लें.

अर्जुन लपककर युधिष्ठिर के पास जा पहुंचा और उनसे बोला- 'महाराज, आप इस हालात में हमें छोड़कर कहां जा रहे हैं? आपने कवच और शस्त्र क्यों उतार डाले? शत्रु तो कवच और अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित खड़े हैं? और बस, अब युद्ध शुरू ही होने वाला है. आखिर आपकी मंशा क्या है?'

पर युधिष्ठिर को तो कुछ सुनाई नहीं देता है. वह अपनी ही धुन में चले जा रहे थे. अर्जुन की बातें उन्होंने सुनी ही नहीं. वह आगे बढ़ते चले गये.

इतने में श्रीकृष्ण बोले- 'अर्जुन, मैं समझ गया कि महाराज युधिष्ठिर की इच्छा क्या है. वह युद्ध होने से पहले

> *धर्म अचानक नष्ट नहीं हो जाता. समय-समय पर उसे विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है और उसकी परीक्षा हुआ करती है. बड़े-बड़े धर्मात्मा भी ऐसी नाजुक घड़ियों में अपने औसान भूल जाते हैं और अधर्म की राह चल पड़ते हैं.*

पितामह भीष्म आदि बड़े-बूढ़ों की अनुमति एवं आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये इस प्रकार निःशस्त्र होकर जा रहे हैं, क्योंकि बिना बड़े-बूढ़ों की आज्ञा के लिये युद्ध करना अनुचित माना जाता है. यही कारण है कि धर्मराज ने न्यायोचित और विजय प्राप्त करने वाली नीति अख्तियार की. धर्मराज का उद्देश्य अच्छा ही है.'

उधर दुर्योधन की सेना के वीरों ने जब देखा कि युधिष्ठिर बाहें ऊपर उठाए और हाथ जोड़े चले आ रहे हैं तो समझा कि वह संधि करने के उद्देश्य ही आ रहे

होंगे. यह सोचकर किसी ने तो उन्हें धिक्कारा. कुछ ने आनंद का अनुभव किया और आपस में कहने लगे- 'वह देखो! राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़े निःशस्त्र होकर चले आ रहे हैं. हमारी भारी सेना देखकर वह डर गये और अब हमसे सुलह करने आ रहे हैं. धिक्कार है ऐसे डरपोकों को, जो सारे क्षत्रिय-कुल के अपमान का कारण बन रहे हैं.'

शत्रु-सेना के हथियार-बंद वीरों की कतार को चीरते हुए युधिष्ठिर सीधे पितामह भीष्म के पास पहुंचे और झुककर उनके चरण छुए. फिर बोले- 'पितामह! हमने आपके साथ लड़ने का दुःसाहस कर ही लिया. कृपया हमें युद्ध की अनुमति दीजिए और आशीर्वाद भी कि हम युद्ध में विजय प्राप्त करें.'

भीष्म बोले- 'बेटा युधिष्ठिर, मुझे तुमसे यही आशा थी. तुमने भरत-वंश की मर्यादा रख ली. तुमसे मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ. मैं स्वतंत्र नहीं हूं- विवश होकर मुझे तुम्हारे विपक्ष में रहना पड़ रहा है. फिर भी मेरी यही कामना है कि रण में विजय तुम्हारी हो. जाओ, हिम्मत से युद्ध करो- विजय तुम्हारी ही होगी. तुम कभी परास्त नहीं हो सकते.'

भीष्म की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के बाद युधिष्ठिर आचार्य द्रोण के पास गये और परिक्रमा करके उनको दंडवत किया. आचार्य ने आशीर्वाद देते हुए कहा- 'धन किसी के अधीन नहीं होता. किंतु मनुष्य तो धन ही का गुलाम बना रहता है. यही कारण है कि मैं भी कौरवों के अधीन हूं- उनका साथ देने को विवश हूं. फिर भी मेरी यही कामना है कि जीत तुम्हारी ही हो.' आचार्य द्रोण से आशीष ले धर्मराज ने आचार्य कृप एवं मद्रराज शल्य के पास जाकर उनके भी आशीर्वाद प्राप्त किये और अपनी सेना में लौट आए.

युद्ध शुरू हुआ, तो पहले बड़े योद्धाओं में द्वंद्व होने लगा. बराबर की ताकतवाले एक ही जैसे हथियार लेकर दो-दो की जोड़ी में लड़ने लगे. अर्जुन के साथ भीष्म, सात्यिकि के साथ कृतवर्मा और अभिमन्यु बृहत्पाल के साथ भिड़ गये. भीमसेन दुर्योधन से जा भिड़ा. युधिष्ठिर शल्य के साथ लड़ने लगे. धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण पर सारी शक्ति लगाकर हमला बोल दिया और इसी प्रकार प्रत्येक वीर युद्ध-धर्म का पालन करता हुआ द्वंद्व युद्ध करने लगा.

इन हजारों द्वंद्व युद्धों के अलावा 'संकुल-युद्ध' भी होने लगा. हजारों-लाखों सैनिकों के झुंड-के-झुंड जाकर विरोधी सैनिक-दल पर टूट पड़ने लगे. इस प्रकार एक दल के दूसरे दल से लड़ने को 'संकुल-युद्ध' कहा जाता था. दोनों पक्ष के असंख्य सैनिक पागलों की भांति अंधाधुंध लड़े और गाजर-मूली की भांति कट मरे. रक्त और मांस के साथ रौंदी जाकर हरी-भरी भूमि कीचड़ भरे दलदल-सी बन गई. ऊपर से कितने ही घोड़े और हाथी भी इस दलदल में कट-कटकर गिरे. इस कारण रथों का चलना कठिन हो गया. उनके पहिये कीचड़ में धंस जाते थे. कभी-कभी लाशों में फंस जाने से रथ भी रुक जाते थे.

भीष्म के नेतृत्व में कौरव-वीरों ने दस दिन तक युद्ध किया. दस दिन के बाद भीष्म आहत हुए और द्रोणाचार्य भी जब खेत रहे तो कर्ण को सेनापतित्व ग्रहण करना पड़ा. सत्रहवें दिन की लड़ाई में कर्ण का भी स्वर्गवास हो गया. इसके बाद शल्य ने कौरवों का सेनापति बनकर सेना का संचालन किया.

आजकल की युद्ध-प्रणाली में द्वंद्व युद्ध की प्रथा ही बंद हो गई है. अंधाधुंध 'संकुल-युद्ध' ही हुआ करता है.

भीष्म के नेतृत्व में कौरव-वीरों ने दस दिन तक युद्ध किया. दस दिन के बाद भीष्म आहत हुए और द्रोणाचार्य भी जब खेत रहे तो कर्ण को सेनापतित्व ग्रहण करना पड़ा. सत्रहवें दिन की लड़ाई में कर्ण का भी स्वर्गवास हो गया. इसके बाद शल्य ने कौरवों का सेनापति बनकर सेना का संचालन किया.

इस प्रकार महाभारत का युद्ध कुल अठारह दिन चला. युद्ध के अंतिम दिनों में घोर अन्याय और कुचक्रों से काम लिया गया. बुरी युक्तियों का बोलबाला हो गया.

प्रायः देखा जाता है कि धर्म अचानक नष्ट नहीं हो जाता. समय-समय पर उसे विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है और उसकी परीक्षा हुआ करती है. बड़े-बड़े धर्मात्मा भी ऐसी नाजुक घड़ियों में अपने औसान भूल जाते हैं और अधर्म की राह चल पड़ते हैं. बड़े जिस रास्ते जायें, साधारण लोग भी उसी का अनुसरण करते हैं. फलतः अधर्म पर सबके-सब उतारू हो जाते हैं. धीरे-धीरे धर्म की आवाज नक्कारखाने में तूती की-सी हो जाती है. अंत में धर्म का नाम-निशान तक मिट जाता है और संसार पर अधर्म का ही राज हो जाता है.■

जेन भण्डारी

एडिनबरा में १९४४ जन्म. लेखिका और चित्रकार. ४० साल भारत में रह रही हैं. मुम्बई की कविता पठन संगठन Loquotions में समन्वयक की भूमिका. कविता संग्रह Single Bed और Aquarius तथा दो कथा संग्रह प्रकाशित.

कविता

मैं वही हूँ जो मैं थी

छोड़ो भी
तुमने मुझे नहीं जाना
तुमने नहीं जाना कि मैं कौन थी—
मेरे साथ तीस साल रहे
और कभी नहीं देखा कि
मैं स्वयम् अपने लिए क्या थी।

मैं थी
मेरी अपनी धूप
गीतों की नायिका
चित्रकार, कवियित्री
कहानियाँ सिरजनेवाली
यह सब मैं थी।

मैं थी तुम्हारे बच्चों की माँ
संगिनी पत्नी
गृहिणी
तुम्हारी नारी
यह सब मैं थी।

और हर पल
मैं अन्तर से मरती रही थी
क्योंकि मैं नहीं हो पाई
तुम्हारी नारी
और फिर भी साथ-साथ स्वयं भी।
■

काली औरत के सपने

काली औरत के सपने
बहुत उजले-उजले हैं
और उसकी सच्चाई गहरी आबनूसी।

वह पैदा हुई है एक दर्द के साथ
जिसे कोई रंग नहीं दिया जा सकता।

वह पानी का रंग उधार लेती है
अपनी आँखों को भरने के लिए
और गहरे जख़्मों में तैरने के लिए
अपने काले बदन के।

अपने ओठों पर दबाती हुई मौन चीख
हर काले आदमी का।

और भी काली हो जाती है वह
उसके ख्याल उड़ जाते हैं
सफेद चिड़ियों की तरह
चाँदनी के टुकड़े बीन लाने को।

अपनी गोद भरने को
एक काली औरत
काला पाप जीती है
और गोरे बच्चे की चाहत रखती है।
■

आशा जोगलेकर
कविताओं का शौक परिवार की देन है. १९९९ तक दिल्ली में निवास. अब अमेरिका में रहती है. ब्लॉग जगत में सक्रिय भागीदारी.
सम्पर्क : ashaj45@gmail.com

इस देश में वापस आकर

इस देस में वापस आकर, कितना अच्छा लगता है
इसका सच्चा झूठा किस्सा सारा सच्चा लगता है।

इसकी धूल भरी सड़कें और इसका धूमिल आसमान
गाता या रोता हर कोई अपना बच्चा लगता है।

इसकी धुंध और इसके कोहरे, इसकी ठंडक और गर्मी
इसका हर मौसम इस दिल को सचमुच अच्छा लगता है।

ताजे अमरूदों के ठेले, सिंघाडों की हरियाली
देख के ये प्यारे से नजारे मन कच्चा-कच्चा लगता है।

इसके वृक्ष बबूल के हों या हों रसीले आमों वाले
हम को तो हर पेड़ से लटका प्यार का गुच्छा दिखता है।

पार्कों में मिलते वो पड़ोसी जो न कभी मुस्कायेंगे
उनकी चढ़ी त्यौरियों पीछे कुछ अपनापा लगता है।

सुंदर स्वच्छ परदेस में चाहे कितने ही सुख क्यूं न मिले
देसी घुडकी खा कर भी रबडी का लच्छा लगता है।

■

खिड़की

मेरे मन का उजाला ये,
तुम तक भी पहुँच जाता
जो अपने दिल की इक खिड़की,
कभी तुम भी खुली रखते।

बस आँखें बंद करने से,
मुश्किलें कम नही होती
तुम भी यह जान ही जाते
जो आँखों को खुला रखते।

हमेशा खुद को वंचित करके,
दूसरा खुश नही होता
सच मानो मैं भी खुश होती,
जो तुम खुद के लिये जीते।

मन के अंदर जो दुख पनपे,
हँसी होंठों पे कैसे हो
दिल से तब मुस्कुराते तुम,
जो खुद अपनी खुशी चुनते।

तपस्या, त्याग ये सब कुछ
तब तक ही सही लगता
करो जिसके लिये ये सब,
वे खुद कुछ कद्रदाँ होते।

मैं तो इस प्यार से अपने,
जगमगा कर रखूँ आंगन
कभी तुम भी सुधर जाओ
और आ जाओ इस रस्ते।

■

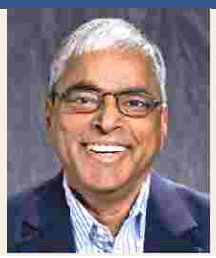

डॉ. सुरेश राय

जन्म महडौर, जिला गाजीपुर. शिक्षा - बनारस हिन्दू विवि, रूड़की विवि तथा कुरूक्षेत्र विवि से इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग में क्रमशः स्नातक, स्नातकोत्तर एवं आचार्य की उपाधि. अमेरिका में १९८६ से कार्यरत. कविता और कहानी लेखन में रुचि. प्रकाशित कविता संग्रह- 'अनुभूति के दो स्वर' में एक स्वर स्व. जयन्ती राय (पत्नी) तथा दूसरा स्वर सुरेश का. अमेरिका से प्रकाशित हिन्दी पत्रिका 'विश्व-विवेक' का कई वर्षों तक सह-सम्पादन भी किया.

सम्प्रति : लुजियाना स्टेट विवि., बैटनरूज के इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग में प्रोफेसर. ईमेल : suresh@ece.lsu.edu

कविता

गाँधी

गाँधी जिन्दा हैं।
किसने कहा -
मैंने कहा।
तुम कौन?
मैं, नेता -
भाड में जाओ।

गाँधी जिन्दा हैं।
किसने कहा -
मैंने कहा।
तुम कौन?
मैं, समाज सेवी -
भाड में जाओ।

गाँधी जिन्दा हैं।
किसने कहा -
मैंने कहा।
तुम कौन?
मैं, बुद्धजीवी लेखक -
भाड में जाओ।

गाँधी जिन्दा हैं।
किसने कहा -
मैंने कहा।
तुम कौन?
मैं, आम आदमी -
ठहरो, सुनो।
कैसे कह सकते हो?
तुम्हारे तो आँख, कान, मुँह बन्द हैं।

मैं, गाँधी का बन्दर
पल-पल मरकर जीता हूँ।
तभी तो कहता हूँ -
गाँधी जिन्दा हैं।
गाँधी शरीर नहीं
विचार हैं।
मुश्किल घड़ी में
अहिंसा और असहयोग के तेवर
लौट आते हैं, और
गाँधी जिन्दा हो जाते हैं।

एक प्रश्न

अगर मैं ईश्वर हूँ
तो मरता क्यों हूँ?
अगर मैं ईश्वर नहीं
तो जीता क्यों हूँ?

सृष्ट जीव -
स्रष्टा का स्वरूप कैसे?
साकार - सगुण
निराकार का रूप कैसे?

अद्वैत - द्वैत
शब्द-जाल अथवा ब्रह्म-जीव-विज्ञान ।
समाधि-बोध
गूँगे का गुड़ वा रामकृष्णीय-भावावेश संधान।

सोऽहम् पर आवृत
सर्वकालिक भ्रम नष्ट कर।
अतीन्द्रय दर्शन से
घनीभूत अन्धकार विनष्ट कर।

■

प्राण शर्मा

१३ जून, १९३७ को वजीराबाद (अब पाकिस्तान) में जन्म. पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए., बीएड. १९६५ से यू.के. में निवास और वहाँ के लोकप्रिय शायर और लेखक हैं. यू.के. से निकलने वाली हिन्दी की एकमात्र पत्रिका 'पुरवाई' में ग़ज़ल के विषय में महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं और यू.के. में पनपे नए शायरों को कलम माजने की कला सिखाई है. आपकी रचनाएँ पंजाब के दैनिक पत्र, 'वीर अर्जुन', नयाज़ानोदय, भाषा एवं 'हिन्दी मिलाप' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं. देश-विदेश के कवि सम्मेलनों, मुशायरों तथा आकाशवाणी कार्यक्रमों में हिस्सेदारी की है तथा अनेकों पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं. प्रकाशित रचनाएँ : 'ग़ज़ल कहता हूं' (ग़ज़ल संग्रह), 'सुराही' (कविता संग्रह).

संपर्क : 3, Crackston Close, Coventry, CV2 5EB, U.K. Email : sharmapran4@gmail.com

अपनी बोली

पहले अपनी बोली बोलो
फिर चाहे तुम कुछ भी बोलो.

इंग्लिश बोलो, रूसी बोलो
तुर्की बोलो, स्पैनिश बोलो
अरबी बोलो, चीनी बोलो
जर्मन बोलो, डैनिश बोलो
कुछ भी बोलो लेकिन पहले
अपनी माँ की बोली बोलो.

अपनी बोली माँ की बोली
मीठी-मीठी, प्यारी-प्यारी
अपनी बोली माँ की बोली
हर बोली से न्यारी-न्यारी.

अपनी बोली माँ की बोली
अपनी बोली से नफ़रत क्यों
अपनी बोली माँ की बोली
दूजे की बोली में ख़त क्यों.

अपनी बोली का सिक्का तुम
दुनिया वालों से मनवाओ
खुद भी मान करो तुम उसका
औरों से भी मान कराओ.

माँ बोली के बेटे हो तुम
बेटे का कर्त्तव्य निभाओ
अपनी बोली माँ होती है
क्यों ना सर पर उसे बिठाओ.

■

हिंदी

गूँजे हिंदी कविता मन में
मुरली बजे ज्यों वृदावन में.

हिंदी कविता के मतवाले
उसको तन-मन से सुनते हैं
उसके अनगिन भक्त निराले
उसके सपने ही बुनते हैं.

नेह बढ़ाती, धूम मचाती
साख उसकी बढ़ती ही जाए
सबको भाती यह भरमाती
फूलों जैसी वह हर्षाये.

कितनी है वह गौरवशाली
कितनी है वह वैभवशाली
उसके बोल बड़े प्यारे हैं
उसके बोल बड़े न्यारे हैं.

उसकी खुशबू ऐसी खुशबू
क्या होगी खुशबू चन्दन की
गूँजे हिंदी कविता मन में
मुरली बजे ज्यों वृन्दावन में.

■

सत्यनारायण शर्मा 'कमल'

८ अगस्त, १९२६ को कानपुर में जन्म. डीएवी कालेज कानपुर से स्नातक. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविता-कहानियाँ प्रकाशित. हैदराबाद की साहित्य गोष्ठियों और काव्य गोष्ठियों में सक्रिय. काव्य-संग्रह 'स्मृतियों की परछाइयाँ' और एक ऐतिहासिक आलेख के साथ कविता संग्रह 'कश्मीर का महाभारत' प्रकाशित. हैदराबाद में 'निराला-सम्मान' प्राप्त. अब ई-कविता समूह पर कवितायें लिखते हैं. सम्प्रति- कानपुर में स्थायी निवास.

सम्पर्क : ahutee@gmail.com मोबाइल नंबर : ९७९४३९३४४८

कविता

सिमटती ज़िंदगी

अभी जीवन शेष साथी
है अभी उम्मीद बाकी

कठिन परिश्रम संघर्षों की
पारियों के सफल नायक
जर्जरित तन व्यथित मन
तुम न थक कर बैठ जाना.

ज़िंदगी की शाम पर घिरते हुए
सारे अँधेरे लांघ जाना
भोर के आकाश के आलोक को
भर मुट्ठियों में लूट लाना.

और यों अगवा किये आलोक में
डुबा देना रात अमाँ की.

बिखरते परवार के परिवेश में
दर्द बनता पीढ़ियों का अंतराल
कौन जाने कहाँ जाकर थमेगा
इस सदी का मोह माया-जाल.

तुम उपेक्षा का घिनौना गरल पी
कंठ में धर कर जमा लेना
और अपनों से मिले अपमान की
घूँट कड़वी भी पचा लेना

घाव अब तक सब सहे हैं
और सह लेगी ये छाती.

ताकते क्या हो तुम्हे कब रोक पाईं
चिर अगम आकाश की मजबूरियाँ
अरे तुमने तो उछाल कर नाप डालीं
सौर-मंडल के ग्रहों की दूरियां.

उम्र की दहलीज पर घिरते तमस के
पार जाना भय न खाना
चिर-सृजन का बीज तुम
अमरत्व पी कर लौट आना.

सृष्टि का वरदान हो तुम
अंकुरण की अमर थाती
है अभी उम्मीद बाकी
अभी जीवन शेष साथी.

■

नवीन सी चतुर्वेदी

२७ अक्तूबर १९६८ को मथुरा में जन्म. छन्द, ग़ज़ल, हाइकु, गीत-नवगीत, तुकांत-अतुकांत कविताओं के अलावा गद्य लेखन. आकाशवाणी मथुरा-वृन्दावन और आकाशवाणी मुंबई से कविता पाठ. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन. ई-क़िताब 'कुछ अपना कुछ औरों का एहसास' प्रकाशित. ब्लॉग 'ठाले बैठे' का संचालन. सम्प्रति - मुंबई में सिक्यूरिटी एक्विपमेंटस के व्यवसाय में संलग्न.

सम्पर्क : navincchaturvedi@gmail.com

खड़ी दिवाली दरवाजे पर

सावन बीता भादों बीता
क्वार मास भी जाए रीताऽ
खड़ी दिवाली दरवाजे पर
सजना तुम कब आओगे घर

दिल, दीपक सा जलता पल-छिन
राह तकूँ तारीखें गिन गिन
जल्दी आऊँगा दोबारा
संदेशा था यही तुम्हारा

मांग सिंदूरी तुम्हें पुकारे
कंगन फिरते मारे मारे
हो गई पलकें बोझिल मेरी
प्रियतम अब तुम करो न देरी

देखो सजना जल्दी आना
चटख रंग की मेंहदी लाना
नई साड़ियाँ ली हैं मैंने
उन पर पहनूंगी मैं गहने

कितनी बातें साथ तुम्हारे
करनी मुझको सांझ सकारे
दिल का हाल सुनाऊंगी में
तुमको भी दुलाराऊंगी मैं

भर कर रबड़ी वाला कुल्ला
तुम्हें खिलाऊँगी रसगुल्ला
खीर-पकौड़ी जो बोलोगे
पाओगे, जब मुंह खोलोगे

तुम्हें बोलने दूंगी ना मैं
होंठ खोलने दूंगी ना मैं
कितना मुझे सताते हो तुम
साल गए घर आते हो तुम

बात सिर्फ मेरी ही ना है
बच्चों का भी यह कहना है
गाँव आज पहले से उन्नत
क्यूँ न यहीं पर करिए मेहनत

यहाँ काम है अरु पैसा भी
लाओगे तुम जो जैसा भी
जीवन यापन हम कर लेंगे
सागर अँजुरी में भर लेंगे

यहाँ ज़िंदगी भी है सुखकर
साथ रहेंगे, हम सब मिल कर
पोंछ पसीना, कष्ट हरूँगी
फिर न कभी कम्प्लेन करूंगी.

■

कमला निखुर्पा

५ दिसम्बर १९६७ को पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड में जन्म. एम.ए. (हिन्दी), बी.एड, विभिन्न संग्रहों में हाइकु, ताँका, लघुकथाएँ प्रकाशित. वीणा, आरोह-अवरोह, वस्त्र-परिधान, अविराम, हिन्दी टाइम्स साप्ताहिक (कनाडा), हिन्दी गौरव मासिक (आस्ट्रेलिया), उदन्ती, अनुभूति, लेखनी, हिन्दी हाइकु आदि में रचनाएँ प्रकाशित. सम्प्रति - हिन्दी प्रवक्ता, केन्द्रीय विद्यालय वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून.

सम्पर्क : kamlanikhurpa@gmail.com ब्लॉग : http://yugchetna.blogspot.com

ताँका

पहाड़ी नदी

पहाड़ी नदी है
अल्हड़ किशोरी
कभी मचाए
ये धमाचौकड़ी
तो कभी करे किल्लोल

पहाड़ी नदी
बहाती जीवनधारा
सींचे प्रेम से
तरु की वल्लरियाँ वन औ उपवन

पहाड़ी नदी है अजब पहेली
कभी डराए हरहरा कर ये
जड़ें उखाड़ डाले
तटों से खेले
ये अक्कड़-बक्कड़
छूकर भागे, तरु को तिनके को
आँखमिचौली खेले

आईना दिखा
बादलों को चिढ़ाए
कूदे पहन मोतियों का लहंगा
झरना बन जाए

बहती चली
भोली अल्हड़ नदी
छूटे पहाड़ छूटी घाटियाँ पीछे
सबने दी विदाई

चंचल नदी
भूली है चपलता
गति मंथर
उड़ गई चूनर
फैला पाट-आँचल

पहाड़ी नदी
पहुँची सिंधु-तट
कदम रखे सँभल सँभल के
थकी मीलों चलके

पहाड़ी नदी
बन जाती भक्तिन
बसाए तीर्थ
तटों पर पावन
भक्त भजन गाए

दीपों से खेले
लहराकर बाँहें
कहे तारों से
आ जाओ मिलकर
खेलेंगे होड़ाहोड़ी।

'ताँका' का अर्थ है लघु गीत.
यह आठवीं शताब्दी का ५ पंक्तियों का जापानी छन्द है, जिसमें ५-७-५-७-७ = ३१ वर्ण होते हैं.

देवी नागरानी

मई ११, १९४१ को कराची में जन्म. मुंबई में रहते हुए मांटेसरी व गणित के डिप्लोमा हासिले किये। विगत तीन दशकों से आप अपनी भाषा और मिट्टी की गंध की खुशबू को बिखरने में सतत लगी हुई हैं। इंटरनेट को वे नये जमाने का कारगर हथियार मानती हैं जिसने हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के नये दरवाजे खोले हैं। ग़म में भीगी खुशी, सिंधी में ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित। राष्ट्रीय समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं में गीत ग़ज़ल, कहानियों का प्रकाशन। नेट पर कई जालघरों में शामिल।

संपर्क : न्यूजर्सी, यू.एस.ए. ईमेल : dnangrani@gmail.com

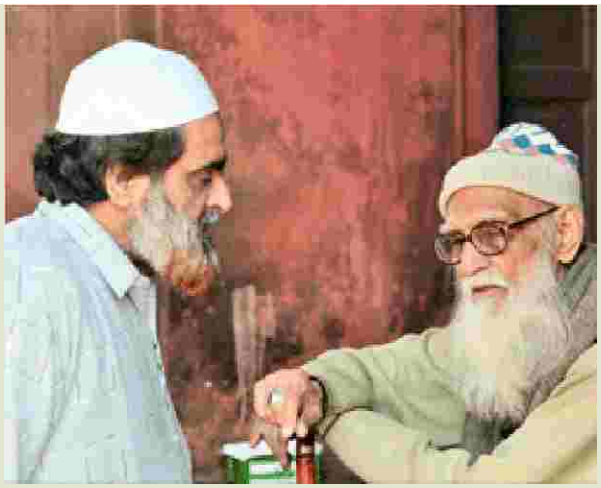

वो फ़स्ले-गुल की उम्मीदें लगाए बैठे हैं
जो अपने ज़हन में सहरा तपाए बैठे हैं

ज़रूरत उनको है अब आइना दिखाने की
वतन-फ़रोश जो चेहरा छुपाए बैठे हैं

छिपा के हाल जो अपना हमारा पूछा किए
उन्हीं को ज़ख्म हम अपने दिखाये बैठे हैं

लगेगी देर न उसको शोला बनने में
दबी-सी आग जो दिल में छिपाए बैठे हैं

ये जानते हैं कि है ज़िंदगी बड़ी ज़ालिम
उसी को दिल से हम फिर भी लगाए बैठे हैं

ज़मीं पे पांव कभी जिनके टिक नहीं पाते
वो आसमान को सर पर उठाए बैठे हैं

उदास बैठे हुए हैं किसी की राह में हम
दिया इक आस का 'देवी' जलाए बैठे हैं.

■

फिर ज़बां आप खोलिये साहब
पहले लफ़्ज़ों को तोलिये साहब

अब न ख़्वाबों में डोलिए साहब
जागिए, खूब सो लिए साहब

घूँट इक आप पी के देखें, फिर
ज़हर बातों में घोलिये साहब

जिनसे आती हो दहशतें अंदर
बंद वो दर न खोलिये साहब

क़र्ज़ पर क़र्ज़ ले रहे हैं आप
कब चुकाएंगे, जो लिये साहब

कुछ समर अपना भी उठाना है
बोझ दुनिया का ढो लिये साहब

मन की मनमानियों की गंगा में
पाप सब खुद ही धो लिये साहब

इतनी शीरी ज़ुबाँ है क्या कहिए
मस्लेहत क्या है, बोलिये साहब

बनके धृतराष्ट्र बैठे हैं 'देवी'
पट्टी आँखों से खोलिये साहब.

■

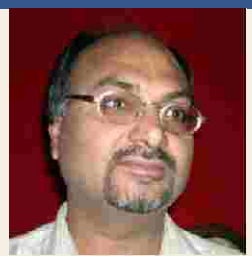

डॉ. महेन्द्र कुमार अग्रवाल

२१ अप्रैल १९६४ को जन्म. एम.एस-सी. (जन्तु शास्त्र) गोल्ड मेडलिस्ट, आयुर्वेदरत्न, एम.ए. (हिन्दी साहित्य) गोल्ड मेडलिस्ट, एल-एलबी. देश-विदेश की उर्दू एवं हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. कृतियाँ : ग़ज़ल संग्रह - पेरोल पर कभी तो रिहा होगी आग, शोख मंज़र ले गया, ये तय नहीं था, बादलों को छूना है चांदनी से मिलना है, क़बीले की नई आवाज़ (उर्दू में), ग़ज़ल कहना मुनासिब है यहीं तक. ग़ज़ल और नई ग़ज़ल (आलोचना), नई ग़ज़ल-यात्रा और पड़ाव (आलोचना). सम्मान : स्व. सत्यस्वरूप माथुर स्मृति काव्य सम्मान, पन्नालाल श्रीवास्तव नूर सम्मान, दुष्यन्तकुमार सम्मान, काव्य शिरोमणि सम्मान, राष्ट्र भाषा रत्न सम्मान, साहित्य श्री सम्मान.

सम्पर्क : बी.एम.के. मेडिकल स्टोर, सदर बाजार, शिवपुरी (म.प्र.) ई-मेल : mkagrwal@yahoo.com ब्लॉग ghazalshivpuri.blogspot.com

ग़ज़ल

हर किसी की वेदना है वक्त का आव्हान है
एक बूढ़े आदमी में मुल्क भर की जान है

खींचकर लाया घरों से किस क़दर हर शख़्स को
देखकर हरकत में जिसको देश भी हैरान है

वक्त दें इसको जरा-सा खोलकर देखें अभी
ये नही कटपीस जैसी बात पूरा थान है

लड़ रहा इस बात पर बेहतर हो सबकी ज़िन्दगी
आमरण अनशन का हर दिन दोस्तो रमज़ान है

जाने कैसी चेतना फैली हुई है हर तरफ़
आज सत्ता भी हरम में देर तक हलकान है

शेर के पंजों से छूटी है यहां जम्हूरियत
ये नई नस्लों के हक़ में इक नया वरदान है

ये लड़ाई हां अधूरी है सियासत को समझ
इस तरह इतरा के मत चल तू अभी नादान है

जीतकर भी जीत के अभिमान से वो दूर है
कह रहा है वो सभी से आपका अहसान है

ये हजारों की उमीदें ये करोड़ों धड़कनें
नाम है अन्ना हजारे याकि हिन्दुस्तान है

फिर नई तारीख़ लिखूंगा हमारे मुल्क की
ले उड़ा बूढ़ा कबूतर ये तिरंगा शान है.

■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

अब भी इंसान मुझमें रहता है

कई बार अचानक ऐसे शख्श से आपकी मुलाकात हो जाती है जिससे मिल कर आपको अपनी ही किस्मत पे रश्क होने लगता है. जनाब 'जाफ़र रज़ा' साहेब को मैंने सबसे पहले एक घरेलू गोष्ठी में देखा और सुना. उसके बाद ये मौका दुबारा ऐसे ही घर पर हुई एक अन्य गोष्ठी में मिला. हर बार उनसे मिल कर जो जेहनी सुकून मिला वो लफ्जों में बयां नहीं किया जा सकता. उसके बाद तो उनसे मेल मुलाकात का सिलसिला उनके अचानक हुए निधन तक चलता रहा.

सीधे सादी ज़बान में जाफ़र साहेब जब शेर पढ़ते थे तो लगता था जैसे आप हार सिंगार तले बैठे हैं और फूल झड़ रहे हैं. सादगी उनके लिबास में ही नहीं उनकी पूरी शायरी में नज़र आती थी. ऐसे ही किसी गोष्ठी में वो अपनी किताब से शेर सुना रहे थे और लोग वाह वाह कर कर रहे थे. जब वो शेर सुना कर वापस अपनी जगह लौटने लगे तो रास्ते में ही मैंने उन्हें पकड़ लिया और कहा रज़ा साहेब आपसे एक गुजारिश है, मुस्कुराते हुए बोले कहिये. मैंने कहा मुझे आप अपनी ये किताब अपने दस्तखत करके दे दीजिये और उन्होंने बिना एक पल जाया किये मेरी बात मान ली. आज मैं आपको उनकी उसी किताब 'दूसरा मैं' से रूबरू करवाता हूँ.

कोशिश कर लो लाख 'रज़ा' आसान नहीं
शेरों में ज़ज्बात पिरोना समझे ना.

रज़ा साहेब अपने ही इस लाजवाब शेर को बड़ी खूबसूरती से पूरी किताब में नकारते नज़र आते हैं. ज़ज्बात को जिस तरह से उन्होंने अपने कलाम में पिरोया है वो बेमिसाल है, उनका ये शेर शायद औरों पर सटीक बैठता हो लेकिन खुद उन पर लागू नहीं होता.

छोटी बहर की इस ग़ज़ल में देखिये किस अंदाज़ से वो अपनी बात कहते हैं :

हसरतें, आरजू, लगन, चाहत
ग़म का सामान मुझमें रहता है
ढूंढता है खुलूस लोगों में
ये जो नादान मुझमें रहता है
ग़म किसी का हो ग़म समझता हूँ
अब भी इंसान मुझमें रहता है.

उनकी शायरी आम इंसान की शायरी है जो उसे हर हाल में जीने का संदेशा देती है, उसे जीने के आसान गुर सिखाती है :

बढ़ानी थी अगर अश्कों की कीमत
तबस्सुम में समोना चाहिए था
सलीका सीख लेते खेलने का
अगर दिल का खिलौना चाहिए था
हकीक़त में जो थी फूलों से उल्फत
तो फिर काँटों पे सोना चाहिए था.

फारान बुक डिपू, कुर्ला, मुंबई (०९२२३९०३५१५) से प्रकाशित एक सौ पचास रुपये मूल्य की ये किताब हिंदी और उर्दू लिपि में छपी हुई है. किताब के बाएँ पृष्ठ पर हिंदी में और उसी ग़ज़ल को दायें पृष्ठ पर उर्दू लिपि में पढ़ सकते हैं. उर्दू सीखने में दिलचस्पी रखने

> *सीधे सादी ज़बान में जाफ़र साहेब जब शेर पढ़ते थे तो लगता था जैसे आप हार सिंगार तले बैठे हैं और फूल झड़ रहे हैं. सादगी उनके लिबास में ही नहीं उनकी पूरी शायरी में नज़र आती थी.*

वालों के लिए तो ये एक वरदान ही समझिये.

आइये चलते चलते एक ग़ज़ल के चंद शेर और पढ़ते चलें :

लगेगी एक दिन उनके गुरूर को ठोकर
ज़मीन पर जो क़दम देखकर नहीं रखते.
न जाने कब कोई झोंका फ़साद ले आये
इसी से लोग हवादार घर नहीं रखते.
'रज़ा' वो सर किसी काँधे पे कैसे रखेंगे
जो अपना हाथ किसी हाथ पर नहीं रखते.
किसकी तरफ ये दस्ते-मोहब्बत बढ़ाईये
हाथों से अपने ज़ख्म दबाये हुए हैं लोग
बाँहों में बाहें डाले हुए हैं मगर 'रज़ा'
एक दूसरे से खुद को छुपाये हुए हैं लोग. ■

ओमलता आखौरी

३ मार्च १९४५ को सिमडेगा, झारखंड में जन्म. बीए पार्ट-१ तक शिक्षित. बचपन से ही लेखन में रुचि. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी और लेखों का प्रकाशन. एनसीईआरटी से कविता पुरस्कृत. आकाशवाणी रांची से बाल सभाओं में कहानियों का प्रसारण तथा क्षेत्रीय भाषा में भी बहुत समय तक प्रसारण होता रहा. सर्वेश्वरी समूह एवं kustsevasrm के संस्थापक संत श्री अघोरेश्वर भगवान राम का जीवन चरित्र (खंड काव्य) प्रकाशित.

सम्पर्क : omlata.akhouri@gmail.com

कहानी

हृदयहीन

मस्जिद की अजान के साथ ही जानकी देवी की नींद टूटी. सीतारामऽऽऽ सीतारामऽऽऽ सदा की तरह अभ्यस्त ओठों ने बुदबुदा कर नवप्रभात का स्वागत किया. दोनों हथेलियों को मस्तक और आंखों के सामने ला कर कुछ मंत्र पढ़े तथा मस्तक और आंखों पर अंगुलियों को फेरा. पास ही के किसी मंदिर से आरती के घंट-शंख भी बजने लगे थे हाथ अनायास ही माथे से जा लगे.

आज पन्द्रह तारीख है कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथी. विगत का सब कुछ याद है उन्हें. कुछ भी विस्मृत नहीं. प्रौढावस्था में तो स्मरण शक्ति इतनी तीव्र नहीं रही कभी. प्रायः ही वस्तुयें रखती कहीं और ढूढतीं कहीं और थीं पर अभी तो बीते हुये कल की एक-एक घटनायें, एक-एक बात वैसे का वैसे ही अक्षुण है मन मस्तिष्क पर.

हां तो आज पन्द्रह तारीख है. परसों अर्थात सत्रह तारीख को प्रत्युष का जन्मदिन है. प्रत्युष उनका पोता है. अंग्रेजी के नवम्बर महीने की सत्रह तारीख को उनके पोते का जन्मदिन होता है. रात भर की प्रसव पीड़ा के बाद बहू ने बच्चे को जन्म दिया था तो घर आंगन में उछाह छा गया. पूरा उत्सव छठी का जानकी देवी ने अपने ही जमा किये हुये पैसे से किया. पुत्र हृदयेश को एक पैसा भी खर्च ने नहीं दिया. पति टोक-रोक भी कर रहे थे - 'इतना खर्च मत करो अरे कुछ तो बचा कर रखो.' परन्तु नहीं जानकी देवी कहां किसी की सुनने वाली थी. महरी से ले कर नाते रिश्तेवाले पूरे परिवार के सभी का पहनावा होगा. कोई देखे तो पोते के आगमन से इस वशंवृक्ष के बढ़ने से वे कितनी प्रसन्न हुयी हैं. गोद मे ले कर खिलाया पिलाया दुलराया. तीन तोले का सोने का हार दादा-दादी के तरफ से पोते को दिया और पालना से ले कर झूला तक. चांदी का झनुझुना बजा कर बच्चे के हाथ में पकड़ाते वे भाव विभोर हो उठीं थीं जैसे अपना ही मातृत्व लौट आया हो.

> *थोड़े दिन रह कर देख लीजिये मन नहीं लगा तो हम ले आयेंगे और छुट्टियों में प्रत्युष आयेगा तब तो आप घर आइयेगा ही.*

तो सारी घटनायें आज इसीलिये तो मन पर छाती जा रही हैं उन बीते दिनों की एक-एक बात. क्षण भर के लिये उन्हें लगा कि वे अपने घर पर ही हैं और अभी ही उठ कर पोते के जन्मदिन की सारी तैयारी करवा देगीं. पूजापाठ

प्रसाद सभी कुछ. परन्तु वे कहां हैं अभी? अचानक उत्साह में डूबे हुये पल को एक गहरे निःश्वास ने ढक लिया. वे तो यहां हैं. घर से दूर यहां वृद्धाश्रम में बीते जीवन की जीवंत अनुभूतियों के साथ.

आज का दिन महत्वपूर्ण है इसलिये भी कि आज घर से कोई उन्हें घर ले जाने को अवश्य ही आयेगा. क्योंकि परसों पोते का जन्मदिन है. पोते प्रत्युष का भी बहुत आग्रह होता है कि दादी उसके पास रहे. पोता बहुत मानता है दादी को. वे रहती थीं घर में जब प्रत्युष उनके पास ही रहता. उसकी पूरी देखभाल वे स्वयं करती थीं. पर अब प्रत्युष बड़ा हो गया और उसकी शिक्षा और उसके भविष्य के नाम पर उसे छात्रावास

पहले तो बेटे बहू पूछ भी लेते थे दिन कैसा कटा, ठीक से रहीं अथवा नहीं, समय पर खाया या नहीं, पर धीरे-धीरे इन पांच वाक्यों के संवाद में भी कटौती होती गयी और कभी तो संवादहीन ही रह जाता पूरा दिन.

भेज दिया गया. 'घर में रह कर कुछ नहीं बन पायेगा यह.' बहू का कहना था - 'दिन रात दादी के आगे-पीछे ही घूमता रहता है. क्या पढ़ाई-लिखाई करेगा.'

बिना मन का रोते धोते प्रत्युष चला गया पढ़ने-लिखने, अपना भविष्य संवारने. चाह कर भी कुछ नही कह पायी जानकी देवी. अतंतः दादी पोते के सुनहरे भविष्य में बाधा तो नहीं ही बनती. न कभी नही. और प्रत्युष के जाने के बाद बहू ने नौकरी कर ली थी. बेटे-बहू दोनों सबेरे निकलते तो संध्या ढल जाने पर ही लौटते थे. सारा सारा दिन यों ही निर्रथक पूरे घर मे डोला करतीं थीं वे.

एक दिन बहू ने ही कहा था 'मैं तो कहती हूं माताजी को वृद्धा आश्रम में रहना चाहिये वहां अपने वय की महिलाओं के साथ हंसते बोलते समय कट जायेगा. घर मे अकेली रहतीं हैं. हमलोग तो रात होने पर ही घर लौट पाते हैं. बहू ठीक ही कह रही थी. रात भी ऐसी वैसी नहीं ग्यारह-बारह बजते तब कहीं जाकर कभी बाजार से तो कभी किसी के यहां पार्टी से बेटे-बहू लौटते. दिन का बचा खुचा कुछ वे ही गरम कर के खा लेतीं. पहले तो बेटे बहू पूछ भी लेते थे दिन कैसा कटा, ठीक से रहीं अथवा नहीं, समय पर खाया या नहीं, पर धीरे-धीरे इन पांच वाक्यों के संवाद में भी कटौती होती गयी और कभी तो संवादहीन ही रह जाता पूरा दिन. जानकी देवी ही टोकतीं कभी कुछ पूछतीं तो हां हूं कह कर टाल दिया जाता.

अपनी इस तरह की दिनचर्या से स्वयं से ही उब उठी थीं. पर आज बहू की बातें सुन कर सांस रुक गयी जैसे मन पर कई मनों का पत्थर पड़ गया. देह यष्टि आवेग से कांपने सी लगी तो यह सोच भी पल रही है इनके मन में वे सिहर उठीं. घर तो घर होता है जहां आगमन और गमन की निरंतरता तो बनी ही रहती है. अरे सबेरे काम वाली आती है, भोजन बनाने वाली आती है, कुछ तो चहल-पहल होती ही है. और ठाकुरजी का पूजा घर जो उन्हें सबसे अधिक अपना लगता है. यह सब छूटने की कल्पना भी असहनीय थी उनके लिये पर वे जड़ हो गयी थीं. कुछ भी कहने की स्थिति में नही थीं.

'मां से ही पूछ लो न जो उसे अच्छा लगेगा वही करना' ऐसे ही बिना मन के ही कह दिया हृदयेश ने.

ओह! जानकी देवी का मन तो सचमुच पत्थर हो गया था. क्या हृदयेश मां को दिनभर में एक बार भी देखे बिना रह सकता है. क्यों नही बोलता कि मां कहीं नही जायेगी घर में ही रहेगी.

कोई कुछ नहीं बोला था तब वह समय भी याद है.

फिर बहू ही बोली थी- 'थोड़े दिन रह कर देख लीजिये मन नहीं लगा तो हम ले आयेंगे और छुट्टियों में प्रत्युष आयेगा तब तो आप घर आइयेगा ही.' वह दिन और आज का दिन अभी तक प्रत्युष घर नहीं आया और वे घर नहीं गयीं. समझती हैं इतना जानकी देवी भी कि जो कुछ भी अनुचित कर रहे हैं बेटे बहू वह अपने बच्चे से छिपा कर ही. एक भय तो होगा ही कहीं प्रत्युष भी उन्हीं की तरह. नहीं-नहीं इसके आगे की कल्पना भी नहीं कर सकतीं वे. अंततः हृदयेश उनका अपना जन्मा है अपना ही रक्त मास. अपने पुत्र के लिये इस तरह की बात सोच भी कैसे सकतीं हैं. और एक गहरी निःश्वास छोड़ी उन्होंने.

परन्तु आज तो वह आयेगा ही और जानकी देवी घर जायेंगी ही.

इसी सब सोच में डूबे-डूबे समय का ध्यान ही नहीं रहा उन्हे. घड़ी देखी तो सात से ऊपर हो रहे थे. पूरे वृद्धाश्रम में सदा की तरह सबेरे की दिनचर्या आरम्भ हो गयी थी बहुत ही मंथर गति से. किसी को कहीं आने-जाने की हड़बड़ी तो होती नहीं थी. धीरे-धीरे खांसते-छींकते, आह-ऊह भरते लोग. किसी को घुटने का दर्द तो किसी को कमर का दर्द. सभी को

कुछ न कुछ लगा ही रहता. शरीर से अधिक तो सबका मन अस्वस्थ हुआ करता था. जहां बचपन की किलकारी नहीं, यौवन की उमंग नहीं, मात्र थकी हारी वृद्धा अवस्था ही रहती. उस एकांगी आश्रम की और क्या दिनचर्या होगी. इस हमजोलियों के आश्रम में इसीलिये भी मन नहीं लगताा था जानकी देवी का. उन्हें सदा यह भय रहता कि और कुछ दिन यहीं इस आश्रम में वे रह गयीं तो वे भी उन्हीं की तरह हो कर रह जायेंगी. सभी वृद्धायें दुःख की गठरी बांधे ही बैठी हैं. जिससे बात करो वह विगत की सुखद स्मृतियों के साथ इस आश्रम में आने के दुःख से दुःखी है.

अपने कमरे के बाहर बड़े से कमरे के दीवार पर टंगी घड़ी ने दस बजाये. अभी तक जानकी देवी सोच-विचार में ही खोई थीं. हमें अब उठ कर तैयार हो जाना चाहिये. नहा धो कर उन्होंने अपने छोटे से संदूक से एक अच्छी सी साड़ी निकाली. यही पहन लेंगी. बस फिर तो यहीं आना होगा न राम जानें. पुनः यहां आने की कल्पना मात्र से उनका मन भारी हो गया. क्या उनका हृदयेश इतना हृदयहीन हो गया है उसका मन उसे जरा भी नहीं धिक्कारता कि भरे-पूरे परिवार के रहते हुये उसकी मां अनाथों जैसी वृद्धाश्रम मे पड़ी हुयी है. उनके घर में नहीं रहने से क्या सूनापन नही रहता होगा. अरे एक सुग्गा भी पालो और वह उड़ जाय तो घर सूना हो जाता है. और एक गहरा निःश्वास छूट गया अंतस से.

परन्तु जानकी देवी जैसा सोच रहीं थी वैसा भी नहीं था पुत्र ह्रदयेश. उसे भी लग रहा था कि उससे कोई बड़ा अपराध हो गया है. मां के घर से जाने के बाद पहले दिन ही घर का ताला खोलते ही मन कैसा हो उठा और दिन तो घण्टी बजाने पर एक ही बार मे मां आकर द्वार खोलती थीं. एक बार में ही चाहे कितनी भी रात क्यों न हो गयी हो. क्या मां जागती रहती थी उनके लौटने तक और एक दिन तो सुमित्रा भी बोली थी मां के नहीं रहने से घर अच्छा नहीं लग रहा है. ठाकुर जी की पूजा के पास जले धूप दीप वैसे ही पड़े हैं. आंगन की तुलसी ऐसा ही जल बिना सूख रही हैं. काम वाली भी कैसे-कैसे क्या-क्या कर के जाती है कुछ समझ नही आता. स्वयं काम पर जाने की हड़बड़ी में वह कुछ नहीं देख पाती. यही नहीं ह्रदयेश को तो प्रत्युष को भी उत्तर देना होगा.

आज जब प्रत्युष घर आ जायेगा और घर में मां नही होगी तो क्या उत्तर देगा दादी कहां है? क्या वह सच्ची बात बता सकता है बेटे प्रत्युष को. नहीं, कभी नहीं. उसका मन कांप उठा जो कुछ वह कर चुका है उसके लिये प्रत्युष के समक्ष, हाँ दस वर्षीय प्रत्युष से आंखें नहीं मिला सकता वह. आत्मग्लानि बढ़ती ही जा रही थी. कभी-कभी वह स्वयं पर ही खीझता. क्यों उसने पत्नी की बात मानी थी और अब

जानकी देवी पुत्र का मर्म समझ रही थीं. तभी तो मन पर पड़ा पत्थर धीरे-धीरे गल रहा था. आंसू बन कर आंखों से वे चुपचाप बेटे के पीछे चल दी.

दोनों पीढ़ियों के समक्ष वह नमस्तक है. ग्लानि से डूबा हुआ आगे वाले के समक्ष लज्जित है और पीछे वाले के समक्ष भी स्वयं के मन में भी क्षोभ ही है. अभी मन इतना मां के लिये मोह से भरा जा रहा है उस समय क्यों नहीं वह सोच पाया. क्यों इतना ह्रदयहीन हो उठा था तब.

अब कुछ करना ही होगा. मन को अंतर्द्वन्द में बहुत देर तक नहीं छोड़ता है ह्रदयेश. कोई न कोई समाधान तत्काल निकाल लेना ही उसका स्वभाव है.

आंखें मूंद कर कुछ देर तक वह कुछ सोचता रहा और अब निश्चय पर ही पहुंच गया हो. जैसे दूसरे ही क्षण वह सुमित्रा को फोन लगा रहा था. सुमित्रा के फोन उठाते ही उसने कहा 'आज ऑफिस से जरा जल्दी ही निकलो. मां को लेने जाना है. कल प्रत्युष आ रहा है ना.'

संध्या गहरा गयी थी. जानकी देवी आने वाले दिन की प्रतीक्षा में यों ही उदास बैठी थीं. एक क्षीण आशा मन में थी नन्हें प्रत्युष पर. बेटे की हृदयहीनता ने उनके मन को पत्थर बना दिया. बहू का क्या वह तो पराये घर की है. उसे कर्त्तव्य बोध नहीं है. अपना जन्मा ही पराया हो जाये तो और किसी को क्या कहा जाये. अचानक उनके कमरे का द्वार खुला. दरबान के साथ ह्रदयेश था उनका बेटा. उनकी आखें प्रत्युष को ढूंढने लगीं पर वह नहीं था पीछे से बहू सुमित्रा थीं.

चलो मां ह्रदयेश ने कहा और मां के सारे सामान स्वयं ही समेटने लगा. छोटा संदूक एक बैग बस यही तो था जो मां लेकर आयी थीं पर यह ह्रदयेश ही जानता था कि मां अपने साथ क्या-क्या ले कर आ गयी है घर से. जानकी देवी आवाक थीं चुपचाप बैठी उन्हे देखती. बेटे ने ही उनकी बांह पकड़ कर कुर्सी से उठाया उन्हें. चलो अब तुम्हें वहीं रहना है घर में ही और कहीं नहीं. भले तुम दिन भर अकेले रहो पर रहना वहीं.

जानकी देवी पुत्र का मर्म समझ रही थीं. तभी तो मन पर पड़ा पत्थर धीरे-धीरे गल रहा था. आंसू बन कर आंखों से वे चुपचाप बेटे के पीछे चल दी. ह्रदयेश मन में सोच रहा था कहीं उसके मन में प्रत्युष के समक्ष स्वयं को अनुचित ठहराने का भय था या उसके ह्रदय में स्वयं उपजा मां के प्रति मोह या कर्त्तव्य बोध. संभवतः दोनों ही पर अब जो भी हुआ अच्छा हुआ उसने एक निश्चिंतता की सांस ली जैसे मन का भार हल्का हो गया हो.■

राम किशन सिंह 'भँवर'

२ अक्टूबर १९६२ को सीतापुर, उत्तरप्रदेश में जन्म. परास्नातक एवं डी.सी.ए., 'कहे कलमची' शीर्षक से अखबार में स्थायी स्तम्भ के अलावा पुस्तक 'कृष्ण जैसा समझा वैसा पाया' तथा नाटक 'आखिर कब तक', 'मेहनत, नैतिक और ईमान', 'रहिमन पानी राखिये', 'आम आदमी', 'दंगे' प्रकाशित.

सम्पर्क : 'सूर्य सदन', सी-५०१/सी, इंदिरा नगर, लखनऊ ई-मेल : ram179v@yahoo.com

व्यंग्य

एक आदमी की मौत

वह जो मर गया है आदमी ही था. सुबह का वक्त. लोग टहलने के लिए निकले थे. उसकी लाश सड़क के किनारे पड़ी थी. कौन था? कैसे मरा वह? ये कई सवाल ऐसे थे जो कुछेक लोगों के जेहन में उभर रहे थे. पर मरने वाला एक आदमी था, कपड़े लत्ते से लग रहा था कि वह ऊंची जमात का नही था. खून से उसकी काया लथपथ भी नहीं थी, वह सड़क के किनारे इस तरह पड़ी थी मानो गहरी नींद में सो रहा हो कोई. कुछ लोग उसे घेरे हुए थे. घेरा बनाने वाले दूर-दूर तक मार्निंग वॉक से मतलब नही रखते थे. वे सब आचरज से देख रहे थे. हालांकि वे उसके रिश्तेदार नहीं थे.

मार्निंग वॉक वाले लोग सिर्फ वाकिंग पर थे. कुछ एक ऐसे भी थे जो कुछ कुछ समाजशास्त्र के जानकार थे. जौगिंग करते-करते एक ने दूसरे से कहा कि होगा यह कि रात ज्यादा पी ली होगी या फिर कहीं लड़ा-झगड़ा होगा. मजबूत पार्टी वाले ने ढेर कर दिया होगा.

'पर खून तो बहा नहीं, नहीं-नहीं ऐसा नही हुआ होगा?'

उल्टे प्रश्न को सीधा करते हुए दूसरे ने कहा. तभी हल्की दौड़ में शामिल एक दूसरे ने पूछा कि अब मौत आ गई तो आ गई. वो किसी से पूछ कर तो आती नहीं. अब जैसे शर्मा जी को ही ले लें, मार्निंग वॉक के लिए तैयार हुए ही थे कि दिल जबर्दस्त दौड़ा पड़ा, नही उठ पाये फिर.

निकलने वालों के लिए मरे आदमी की लाश चर्चा में तो थी, पर सभ्य और कुलीन लोग उस जगह रुक कर अपना समय खराब नही करना चाहते थे. समाज की सभ्यता शिखर पर थी. कोई अपना समय मरे आदमी के वास्ते क्यों खराब करे? जिसको जाना था वह चला गया. किसी को पहले से बताकर पैदा भी नहीं हुआ था वह. फिर उन्हें तो रहना है. गणित भी यही कहती है और समाज का अर्थशास्त्र भी. अब कोई मरनेवाले के साथ तो मर नही जाता है. और मरे व्यक्ति बहुत दिनों तक जेहन में रहते भी नहीं है. पुराने पत्ते पेड़ से अपना स्थान इसलिए खारिज कर देते हैं कि नये पत्ते निकल आयें. मिट्टी में मिलने पर वही पत्ते खाद बन जायेंगे. पत्तों और आदमियों के फलसफे में यहीं तो होता है बुनियादी अंतर.

अब जिसे मरना था, वह तो मर गया. समझदारी इसी में थी कि समाज का काम अनवरत चलता रहे. चलता तो रहता है, पर यह सब वैसे ही है जैसे फिल्म शुरू होने से पहले न्यूज रील के चलने जैसा हो. इधर आदमी भी बड़े बेभाव मर रहे हैं. कुंडी खटखटायी, बुढ़िया ने जैसे दरवाजा खोला कि छुरा उसके पेट में और कुंडी खटखटाने वाला घर के अंदर. अखबारों में तो रोजबरोज ऐसी ही सूचनाएं पढ़ने को मिलती हैं. गाड़ी चला रहे थे, सामने वाले को बचाने में लगे कि खुद पलट गये. अस्पताल में ब्रेन हैमरेज फिर सीधे ऊपर. पहले बाल्टी मेरी भरेगी, नहीं पहले मेरी, मेरी, मेरी कहते कहते

> *समाज की सभ्यता शिखर पर थी. कोई अपना समय मरे आदमी के वास्ते क्यों खराब करे? जिसको जाना था वह चला गया. किसी को पहले से बताकर पैदा भी नहीं हुआ था वह.*

> देर दोपहर में पुलिस आई और पंचनामा के लिए पांच आदमियों से दस्तखत करने के लिए कहा, तो सबके सब भाग खड़े हुये. किसी ने कुछ देखा ही नहीं, कब हुआ कुछ पता ही नहीं. इधर से बस गुजर रहे थे, इस मरे को देखा तक नहीं.

गुम्माबाजी हो गई, एक दर्जन घायल और कुछेक ने दम तोड़ दिया. पहले जैसे बच्चा-बच्ची गुड्डे-गुड़िया का खेल खेलते थे अब बड़े लोग 'इसे मारो-उसे मारो' का खेल रहे हैं. सुपाड़ी दो, पूरी न मिले तो सुपाड़ी की कतरन दो, काम दोनों में ही चलना है. आदमी का मारा जाना अथवा उसे मारना आज की दुनिया का अहम् व्यवसाय है. बाहुबली से कभी श्री हनुमान जी का बोध होता था, अब इससे दाउद भाई, छोटा, बड़ा, मंझला शकील, पप्पू यादव, बबलू भैया, आदि आदि का. संकटमोचन हैं, इसलिए उनके नाम के स्मरण मात्र से धंधे की कोई भी वैतरणी पार लग जायेगी. हाथी, पंजा, कमल, साईकिल, लालटेन, ताला-चाभी सभी तो इनके दम पर चलते और लगते हैं. कहीं कम तो कहीं ज्यादा.

सबसे सस्ती है आदमी की जान. इसे जब चाहें, जहां चाहें, कोई वॉट लगा सकता है. घर से निकले कि बाहर घमाघम, ढेर हो गये. मरते ही, वह मान्यताओं की खाल ओढ़े समाज की चिंता का विषय बन जाता है. कुछ समय के लिए वह मानवाधिकार चिंतकों का मुद्दा भी है और अखबारों की सनसनी भी. पर एक आदमी की मौत से कोई हिलता क्यों नहीं, क्या उसकी मौत में जिंदा आदमी अपनी सूरत नही देख पा रहा है. सांस-सांस मर रहे आदमी और अचानक मर गये आदमी में चिंता स्वाभाविक है. उस मरे आदमी को घेरे हुए उन लोगों के पास कोई काम-धाम नही है. सड़क पर इधर-उधर घूमना ही था उन्हें, अब क्या करें इधर-उधर जाकर, इस मरे आदमी के पास ही खड़े हो जाते हैं, समय ही कटेगा कुछ. खड़े लोगों से उसके मरने का कोई ताल्लुक नही है. वे तमाशबीन हैं. डुग्गी बजाते मदारी के पास भी वे लोग वैसे ही खड़े जाते हैं. जो नहीं खड़े थे, उनकी भी आत्मा उधर ही भटक रही थी, पर खड़े इस वास्ते नही हो सकते थे क्योंकि वे या तो अपने वाहन से उतर कर आम आदमी की कोटि में आने से अपनी बेइज्जती समझते थे या अंग्रेजी पहचान देने वाली पोशाक पहने थे. स्टेट्स तो देखना ही पड़ता है. अब यह आदमी होटल ताज के अंदर गिरा, पड़ा व मरा मिलता तो वे सूट-बूट वाले साहेब का वहां पर खड़े होकर हमदर्दी दिखना मुनासिब था. सड़क है. सड़क की भाषा और व्याकरण चलताऊ किस्म का होता है. सड़क पर चलते लोग भीड़ के किस्म में होते हैं. भीड़ नारा लगा सकती है, उत्पात मचा सकती है, झंडा उठा सकती है. भीड़ संवेदना का वरण नहीं कर पाती है. मरने वाले आदमी का घेरा भीड़ जब बढ़ा लेती है, तो आंदोलन के समीकरण बनाने बिगाड़ने वाले चतुर सुजान भी जुट जाते हैं. यह भी ज्यादा देर तक नहीं चलता है. भीड़ की भाषा संवेदना के सुर से अलग है. संवेदना अकेले आदमी की थाती है. दिल की बात दिल तक जाती है.

एक आदमी की मौत न्यूज की लाईन के बन जाने के बाद भी आम आदमी के जेहन में अपनी पैठ नही बना पा रही है. पर रोज सड़क पर कुत्ता टहलाने वाले बाबू मोशाय का कुत्ता जब किसी गाड़ी के नीचे आकर जीभ लंबी कर देता है, तो बाबू मोशाय से मरे कुत्तों के प्रति शोक जताने वाले कई-कई लोग जुट जाते हैं. इसीलिए आदमी रोज-ब-रोज मर रहे हैं. दोपहिये, चौपहिये, मालगाड़ी, हथगोले, बंदूक न जाने कितने-कितने निमित्त उसे मरने, मारने व मिटाने में लगे हुए हैं. आतंक के साये में जी रहे अंचलों में आदमी रात भर जगते हैं, केवल सुबह थोड़ी देर तक सो लेते हैं. एक आदमी की मौत यदि हमारा सरदर्द नहीं बनती है तो समझ लेना चाहिए कि कहीं कोई बीमारी जन्म ले रही है. समय से उसका उपचार जरूरी है क्योंकि संवेदनहीनता का रोग ऐसा मट्ठा है जो इंसानियत के दरख्त की जड़ों में जाने से समूचे पेड़ को ठूंठ में तब्दील कर देगा. हुआ भी यही, जब उस मरे आदमी की तफ्तीश के वास्ते देर दोपहर में पुलिस आई और पंचनामा के लिए पांच आदमियों से दस्तखत करने के लिए कहा, तो सबके सब भाग खड़े हुये. किसी ने कुछ देखा ही नहीं, कब हुआ कुछ पता ही नहीं. इधर से बस गुजर रहे थे, इस मरे को देखा तक नहीं. कौन है, पता नहीं. कैसे मरा, राम जाने. अब मरने वाले के साथ कोई मर नहीं जाता है, यह समाज की बारीक सोच थी. पुलिस ने कहा तो यहां खड़े क्यों थे? जवाब मिला, यहां कहां, अरे हम तो बस का इंतजार कर रहे थे, ये तो बाद में पता चला कि मेरे पीछे एक मरे आदमी की लाश पड़ी है. और आप? पुलिस ने दूसरे से पूछा. मैं, वो इनसे घड़ी का टैम पूछने के लिए रुक गया था.

सिपाही जी दरोगा जी से बोले - साहेब यह पांच दस्तखत तैयार, हो गया पंचनामा. इस तरह आदमी तो रोज मरा करते हैं, फालतू टैम है का - दरोगा ने डांट पिलाई. चलो कुछ धंधे वाला काम भी करना है. ■

चंद्र मौलेश्वर प्रसाद

जन्म अप्रैल १९४२. शिक्षा एम.कॉम और सीएआईआईबी. भारतीय रिज़र्व बैंक, हैदराबाद से सह-प्रबंधक पद से सेवा निवृत्त. लिखने में रुचि जो कविता, लेख, कथा, समीक्षा आदि के जरिए लगातार जारी है.

संपर्क : यशवंत भवन, अलवाल, सिकंदराबाद-५००० १० आंध्रप्रदेश. ईमेल : cmpershad@yahoo.com

'अलाव' का नागार्जुन जन्मशती विशेषांक

इस वर्ष जिन बड़े कवियों - अज्ञेय, शमशेर और केदारनाथ अग्रवाल का शताब्दी वर्ष मनाया जा रहा है, उनमें जनकवि नागार्जुन का नाम भी आता है. बाबा नागार्जुन पर भी कई पत्र-पत्रिकाएँ विशेषांक निकाल रही हैं. दिल्ली से निकलने वाली प्रसिद्ध द्वयमासिक पत्रिका 'अलाव' का जनवरी-फरवरी २०११ अंक 'नागार्जुन जन्मशती विशेषांक' के तौर पर निकाला गया है.

'अलाव' के इस अंक को पूर्णतः बाबा नागार्जुन पर केंद्रित किया गया है जिसमें उनके कृतित्व, व्यक्तित्व और विचारों को हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकारों के लेखन से संजोया गया है. इस अंक को जिन खण्डों में विभक्त किया गया है, वो हैं- कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं, फाँक इजोतक तिमिरक थार, सारा जीवन असुखे जाबे, अर्जुन नागा... उर्फ़ बैजनाथ मिसिर, पर्दे के यात्री, जो भाषा दी उसने हमको : काव्यांजलि, बस थोड़ी और उमस, समय चलता जाएगा निर्बाध और परिचय.

कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं... में बारह विद्वान साहित्यकारों ने अपने विचार रखे हैं. नागार्जुन के काव्य के बारे में विश्वनाथ त्रिपाठी यह मानते हैं कि 'असल में नागार्जुन का काव्य इस बात का भी प्रतिमान है कि पारंपरिक काव्यरूपों में, अपनी भाषा के ठेठ मुहावरे में, हिंदी और उसकी बोलियों की लय में आधुनिक जटिल अंतर्वस्तु कैसे व्यक्त की जा सकती है.' मैनेजर पाण्डेय ने नागार्जुन के दसवें रस 'विक्षोभ रस' के बारे में बताया है कि 'नागार्जुन जिसे विक्षोभ रस कहते हैं, उसके मूल में तीन भावों का योग होता है. वे भाव हैं करुणा, क्रोध और घृणा.' जीवन सिंह बताते हैं कि 'नागार्जुन की कविता पढ़ते हुए निरंतर यह अनुभूति होती रहती है कि जैसे हम किसी युद्ध के मैदान में एक योद्धा को लड़ते हुए देख रहे हैं.'

नागार्जुन नेहरू जी के तथाकथित सोशलिज़्म के विरुद्ध थे. रविभूषण ने उनके विचारों पर प्रकाश डालते हुए बाबा की कविता को उद्धृत किया है जिसमें वे कहते हैं - 'बाहर निभा रहे हो अपने पंचशील-दशशील/ठोक रहे हो घर में तरुणों के सीने पर कील/अभी तुम्हारे दिल-दिमाग की खूबी कौन बताए/हे अद्‌भुत नटराज, तुम्हारी माया कही न जाए.' परमानंद श्रीवास्तव अपने लेख में नागार्जुन की विचारधारा और विश्वदृष्टि पर प्रकाश डालते हैं. भगवान सिंह ने नागार्जुन की भाषा और रमाकांत शर्मा ने उनके काव्य में व्यंग्यबोध पर लेख लिखे हैं. रामनिहाल गुंजन उन्हें

> इस अंक को जिन खण्डों में विभक्त किया गया है, वो हैं- कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं, फाँक इजोतक तिमिरक थार, सारा जीवन असुखे जाबे, अर्जुन नागा... उर्फ़ बैजनाथ मिसिर, पर्दे के यात्री, जो भाषा दी उसने हमको : काव्यांजलि, बस थोड़ी और उमस, समय चलता जाएगा निर्बाध और परिचय.

> *नागार्जुन के बारे में यह तो प्रसिद्ध है ही कि वे निरंतर यात्रा पर ही रहते थे और जैसा कि सम्पादकीय में रामकुमार कृषक ने कहा है- 'नागार्जुन जीवन में ही नहीं, कविता में भी यारी हैं. काल और इतिहास से गुज़रते हुए उनकी यात्रा के अनेक पड़ाव है, लेकिन लक्षित ठिकाना एक ही है- जनमुक्ति.'*

'गीतात्मक संवेदना का कवि' बताते हैं. इसी क्रम में नचिकेता, हरपाल सिंह 'अरुष', अरविंद कुमार और शैलेंद्र चौहान ने उनके काव्य-कर्म पर प्रकाश डाला है.

दूसरे खण्ड 'फाँक इजोतक तिमिरक थार' में शिवशंकर मिश्र ने जिन छः कविताओं को बाबा के अनुरोधानुसार अनुवाद किया था, उन्हें यहाँ यथावत प्रस्तुत किया गया है. देवशंकर नवीन ने नागार्जुन की मैथिली में लिखी गई 'यात्री' के पर प्रकाश डाला है. 'सारा जीवन असुखे जाबे' तीसरा खण्ड है जिसमें शैलेंद्र कुमार त्रिपाठी ने अपने डायरी के बाबा से संबंधित पन्नों को उकेरा है.

चौथे खण्ड 'अर्जुन नागा... उर्फ़ बैजनाथ मिसिर' में बाबा से संबंधित विभिन्न लेखकों के संस्मरण हैं. पद्मजा घोरपड़े ने उनके उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' पर हिंदी विभाग, पुणे विद्यापीठ में हुई चर्चा और पत्राचार का संस्मरण लिखा है. कुबेरदत्त अपने संस्मरण में बाबा की घुमक्कडी पर चर्चा करते हैं और बताते हैं कि सड़क पर चलने वालों की हालत का बयान कभी बाबा ने इस प्रकार किया था- कुत्ते ने भी कुत्ते पाले/देखो भाई/पैदल चलनेवालों की तो/शामत आई... सुवास कुमार ने नागार्जुन से हुए साक्षात्कार का संस्मरण अपने लेख में रखा है. मधुकर गंगाधर उन्हें 'हूटप्रूफ़ जनकवि' मानते हैं तो तरसेम गुजराल उस घटना को याद करते हैं 'जब जालंधर में नाचे बाबा'. माँझी अनंत ने अपनी विदिशा यात्रा के दौरान हुई बाबा से भेंट का संस्मरण लिखा है जब वे डॉ. विजय बहादुर सिंह के पास ठहरे थे. गंगाराम 'राजी' ने १९८४ में बाबा से बनारस में हुई भेंट का संस्मरण प्रस्तुत किया है. इसी प्रकार महेश उपाध्याय, मधुवेश और शशिभूषण बडोनी ने भी अपने संस्मरण दिए हैं.

फिल्म निर्देशक अनवर जमाल ने बाबा के कुछ चित्र और उनके विचार पाँचवें खण्ड में प्रस्तुत किया है. छठवें खण्ड में प्रेमशंकर रघुवंशी, विष्णुचंद शर्मा, विश्वनाथ त्रिपाठी, श्याम सुशील, शोभाकांत, आनंद तिवारी और रामकुमार कृषक ने बाबा को काव्यसुमन अर्पित किए हैं.

सातवें खण्ड में बाबा के गद्य पर अनिल सिन्हा, शांति विश्वनाथन और मणिकांत ठाकुर ने विचार रखे हैं. अनिल सिन्हा मानते हैं कि 'उनके गद्य पर विस्तार से विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार किया जाना समय की मांग है.' शांति विश्वनाथन ने यह स्वीकार किया है कि 'नागार्जुन ने अपने उपन्यासों द्वारा उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाया है.' मणिकांत ठाकुर ने उनके उपन्यासों- बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, नई पौध, वरुण के बेटे और दुखमोचन आदि पर चर्चा करते हुए बताते हैं कि इनमें निम्न वर्ग के अभावों के साथ संघर्षों का सजीव वर्णन मिलता है.

आठवें खण्ड 'समय चलता जाएगा निर्बाध' में नागार्जुन के विविध पहलुओं पर- अर्थात जनकवि, संस्कृति, एक्टिविस्ट, कालजयी रचनाकार, अक्खड और विद्रोही, दलित विमर्श के अलम्बरदार आदि पर सोलह लेखकों ने अपने विचार रखे हैं. अंत में, उनका जीवनवृत्त और रचनावृत्त भी पाठक की जानकारी के लिए दिया गया है.

नागार्जुन के बारे में यह तो प्रसिद्ध है ही कि वे निरंतर यात्रा पर ही रहते थे और जैसा कि सम्पादकीय में रामकुमार कृषक ने कहा है- 'नागार्जुन जीवन में ही नहीं, कविता में भी यारी हैं. काल और इतिहास से गुज़रते हुए उनकी यात्रा के अनेक पड़ाव है, लेकिन लक्षित ठिकाना एक ही है- जनमुक्ति.' इस लक्षित ठिकाने पर पहुँचने और बाबा को समझने के लिए यह विशेषांक विशेष प्रमाणित होगा, ऐसी आशा की जा सकती है. ■

पत्रिका : अलाव - जनवरी-फ़रवरी २०११
संपादक : रामकुमार कृषक
पृष्ठ संख्याः ३८४
मूल्यः ५० रुपए
संपादकीय कार्यालय :
सी-३/५९, नागार्जुन नगर,
सादतपुर विस्तार, दिल्ली-११००९४

रामकिशोर पारचा

फिल्म और टीवी के वरिष्ठ पत्रकार और रंगमंच के अभिनेता. फ्रेंच फिल्म समारोहों के सेंसर बोर्ड के भारतीय सदस्य. फ्रांस, इजरायल और भारत में कई फिल्म समारोह आयोजित किये. दिल्ली और जयपुर में होने वाले पहले अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह के निदेशक हैं. अनेकों प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में नियमित कॉलम प्रकाशित.

सम्पर्क : C-77, Krishi Vihar, opposit-Panchsheel Encleve, Near-Greater Kailsh 1, New Delhi-110048
email : 2photorkp65@gmail.com

शक्ल पे मत जा (हिंदी कामेडी ड्रामा)

सपने, समय, जिन्दगी और संयोगों का कुछ पता नहीं. वे हमें किस रास्ते ले जाएँ. हो सकता है जब वे हमें अपने लगे तभी कुछ ऐसे लोग और घटनाएं भी उनसे जुड़ने जा रहे हों जिन्हें हम ना जानते हैं और ना ही पहचानते हैं. यही नहीं, जब तक उन्हें पहचान पायें तब तक हम किसी ऐसे जाल में फंस चुके हों जिससे निकलना मुश्किल ही नहीं बल्कि असम्भव भी हो. पर क्या आप जानते हैं कि संयोगों और समय के फेर में कुछ ऐसे ही लोग हमें इस संकट से निकालने के संयोगों से भी जुड़ रहे हों. कुछ ऐसे ही लोगों और संयोगों से जुड़ी एक रोमांचक कामेडी फिल्म है निर्देशक अभिनेता शुभ मुखर्जी और उनके साथ प्रतीक कटारे, सौरभ शुक्ला, रघुवीर यादव, आमना शरीफ, मुश्ताक खान, हर्शल पारेख, उमंग जैन, आप प्रदीप काबरा, राजकुमार कनोजिया, आदित्य लाखिया, जॉय सेनगुप्ता और चित्रक बंधोपाध्याय के अभिनय वाली फिल्म शक्ल पे मत जा.

—

देसी बॉयज़ (हिंदी ड्रामा)

रिश्तों में पैसा ज़रूरी है या उनके आधारों को बनाए रखने के लिए वो सिर्फ एक बहाना भर है. पर उसका सच हमें पता होना चाहिए. सो दो साल पहले दुनिया भर में आई मंदी के शिकार हुए विदेश में रहने वाले दो युवकों की कहानी के जरिये निर्देशक रोहित धवन की अक्षय कुमार, दीपिका पादुकोण, जॉन अब्राहम, चित्रांगदा सिंह, अनुपम खेर और ओमी वैद्य के साथ संजय दत्त की मेहमान भूमिका वाली फिल्म देसी बॉयज़ भी इसी सच को दिखाने वाली है.

फिल्म क्यों देखें : अक्षय और जॉन की अच्छी केमिस्ट्री वाली फिल्म है.

फिल्म क्यों न देखें : इसे व्यस्क प्रमाण पत्र मिला है और परिवार के साथ नहीं देखे तो ही अच्छा.

—

डैम ९९९ (हिंदी अंग्रेजी एक्शन ड्रामा)

किसी भी देश में किसी नवनिर्माण का मसला केवल उसके बनने और उसकी इमारत से नहीं जुड़ा होता. वह उस देश और वहां रहने वाले लाखों लोगों के सपनों और उनकी भावनाओं से भी जुड़ा होता है. उस निर्माण में लगने वाली ईंटें, रेत, मिट्टी और उसकी ऊंचाई उनकी सोच में शामिल होती है. लेकिन जब उसके साथ कुछ लोगों के स्वार्थ और भ्रष्ट मंतव्य भी जुड़ जाते हैं तो उस निर्माण के साथ विनाश और डर के साए भी तैरने लगते हैं. यही नहीं, इस मानवीय सोच के साथ जब प्रकृति भी अपना रुख तय कर लेती है तो फिर तबाही तय होती है. कुछ ऐसे ही सपने और डर के बीच एक बाँध से जुड़े लोगों की कहानी को दिखाती है निर्देशक सोहन रॉय की फिल्म डैम ९९९. फिल्म में विनय राय, विमला रामन, जोशुआ फ्रेडरिक स्मिथ, लिंडा एर्सेनियो, हैरी की, आशीष विद्यार्थी और रजित कपूर की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं.

—

लेडिस वर्सेस रिकी बहल (हिंदी ड्रामा)

प्यार में कोई फरेब नहीं चलता. कोई किसी को नहीं ठग सकता और पैसे से प्यार को बदला नहीं जा सकता. पर प्यार सब कुछ बदल सकता है. एक ठग और फरेबी को भी. बस कुछ ऐसा ही सन्देश देने की कोशिश करती है निर्देशक मनीष शर्मा की रणवीर सिंह, अनुष्का शर्मा, परिणिती चोपड़ा, दीपान्निता शर्मा और अदिति शर्मा के अभिनय वाली नयी फिल्म लेडिस वर्सेस रिकी बहल.

फिल्म क्यों देखें : अच्छी मजेदार फिल्म है .

फिल्म क्यों ना देखें : नहीं ऐसा मैं तो नहीं कहूँगा.

—

लंका (हिंदी ड्रामा)

हर जुल्म की एक सीमा होती है बस उस से लड़ने के लिए एक साहस का होना जरूरी है. यह अलग बात है कि वो साहस आपका हो या किसी और का. कुछ ऐसी ही कहानी को दिखाती है निर्देशक मकबूल खान की मनोज वाजपई, अर्जन बाजवा और टिया बाजपाई के साथ यशपाल शर्मा, मनीष चौधरी और यतिन कार्येकर की भूमिकाओं वाली फिल्म लंका.

फिल्म क्यों देखें : मनोज वाजपई के लिए.

फिल्म क्यों ना देखें : ये रामायण वाली लंका नहीं है.

—

ये स्टूपिड प्यार (हिंदी ड्रामा)

प्यार या तो होता है या फिर नहीं होता. उसका कोई शॉर्टकट भी नहीं. बस उसे जानने और पहचाने की जरूरत होती है. ये अलग बात है कि वो कई बार वो सामने होते हुए भी पकड़ में नहीं आता और रेंगता रहता है हमारे सामने. बस कुछ ऐसे ही प्यार की कहानी कहती है निर्देशक राकेश जैन की जतिन खुराना और नुपुर पटवर्धन की भूमिका वाली फिल्म ये स्टूपिड प्यार.

फिल्म क्यों देखें : नए चेहरों वाली फिल्म है.

फिल्म क्यों ना देखें : रिकी के सामने अभिषेक की कोई बिसात नहीं.

सिनेमा की बात

जो हम चाहें (हिंदी रोमांटिक ड्रामा)

अक्सर हम सोचते हैं कि हम जिन्दगी और रिश्तों को समझ रहे हैं तो ऐसा नहीं है. कई बार हम उन्हें अपने सपनों में मिलाकर इस हद तक खेलते हैं कि हमें पता ही नहीं चलता कि कब हम उनके हाथों में खुद ही खेलने लगे. एक बार जब हम उनके हाथों में आ गए तो फिर कोई नहीं जो हमें ये बता सके कि हम अपना तय रास्ता छोड़कर किधर जाएँ. निर्देशक पवन गिल और सनी गिल, सिमरन मुंडी, अचिंत कौर, समर वीरमानी, मानसी मुल्तानी, अली खान और यूरी सूरी के अभिनय वाली फिल्म जो हम चाहें भी एक ऐसी ही कहानी को दिखाने वाली फिल्म है.

—

पप्पू कांट डांस साला (हिंदी कामेडी ड्रामा)

कहा नहीं जा सकता कि रिश्तों में जुड़े जो लोग अलग अलग दुनियाओं से आते हैं वे कैसे रिश्ते और अहसासों को जिन्दगी भर समेटते हुए उन्हें एक बनाए रखते होंगे. इनमें बहुत से लोग ऐसे भी होते होंगे जो इस जद्दोजहद में सफल भी नहीं होते होंगे पर इसके बावजूद वे जिन्दगी भर कोशिश तो करते ही हैं. यही नहीं, ऐसे लोग अक्सर खुद को दूसरों के हिसाब से बदलकर जीने की कोशिश भी करते हैं पर क्या प्यार और रिश्तों को बनाए रखने के लिए खुद को बदलना जरूरी है या किसी रिश्ते का सबसे बड़ा सच और आधार यही है कि हम उसे और खुद को बदले बिना ही जीने के कुछ ऐसे रास्ते तलाश करें जिस से एक दिन वो खुद ही बदलकर हमारा हो जाए. अभिनेता निर्देशक सौरभ शुक्ला की विनय पाठक, नेहा धूपिया, रजत कपूर, संजय मिश्रा, नसीरुद्दीन शह और खुद सौरभ के अभिनय वाली नयी फिल्म पप्पू कांट डांस साला भी दो लोगों की एक ऐसी ही जिन्दगी और रिश्तों की कहानी को दिखाती है.

—

द डर्टी पिक्चर (हिंदी ड्रामा)

कहते हैं सपनों के न तो पाँव होते हैं और न ही पंख. फिर भी बहुत ऊंचे उड़ते हैं और धीरे से चलकर कब हमारी वास्तविक दुनिया को अपने कब्जे में ले लेते हैं पता ही नहीं चलता. पर सपनों की हकीकत बहुत कडवी होती है. उड़ान भरते समय जब कोई उनके पंख कतर देता है तो फिर उनके लिए न आसमान बचता है और ना ही कोई जमीन. तब उनका सच बस बिखरना और टूटना होता है. बस कुछ ऐसे सपनों की दुनिया के सच और यथार्थ को दिखाती है निर्देशक मिलन लुथरिया की विद्या बालन, नसीरूदीन शाह, तुषार कपूर, इमरान हाशमी और राजेश शर्मा के साथ नयी फिल्म द डर्टी पिक्चर.

फिल्म क्यों देखें : विद्या और मिलन लुथरिया के लिए.

फिल्म क्यों ना देखें : यह सबके लिए नहीं बनाई गयी है.■

गर्भनाल का ६१वां अंक प्राप्त हुआ. इसमें प्रभु जोशी जी का आलेख विशेष रूप से भाया. अपने आलेख 'सरलता के सहारे हत्या की हिकमत' में उन्होंने एक बड़ी सामयिक समस्या पाठकों से सामने रखी है.

पता नहीं कौन से सलाहकारों की बातें भारत का गृह मंत्रालय सुनता है कि वह मान बैठा है कि विदेशी व्यापार हिंग्लिश के माध्यम से करना सरल हो जाएगा. अपनी बात के समर्थन में जोशीजी ने हिन्दी के अच्छे-भले शब्दों के बदले अंगरेजी के शब्दों के जो उदाहरण दिए हैं, उनसे हम परिचित हैं. विशेषता उन शब्दों में नहीं, उनके चुनाव में है, जो लेखक की भाषायी पकड़ का परिचायक है. सरलता के नाम पर हिन्दी को हिंग्लिश बना डालने का जो घिनौना अभियान गृह मंत्रालय द्वारा चलाया जा रहा है, उसका पर्दाफाश भी जोशीजी ने किया है. उन्होंने अपना तर्क वैज्ञानिक आधार पर किया है. ऐसे विचार उद्वेलक आलेख की जितनी भी प्रशंसा की जाए, उतनी ही कम है.

वेदमित्र, यू.के.

गर्भनाल का इंटरनेट संस्करण दिसंबर २०११ प्राप्त हुआ. हमेशा की तरह अंक सुन्दर बन पड़ा है. एक बार पुनः बधाई. विशेषकर प्रभु जोशी का मुद्दा बेहद प्रभावशाली है. अब हिंग्लीश को थोपने का षडयंत्र पूरी बेशरमी से चलेगा.

डॉ. विजय शिरढोणकर
संपादक अक्षरशिल्पी

दिसम्बर के गर्भनाल अंक के प्रारंभ में दिया चित्र देर तक देखता रहा. स्वयं भी पचासी वर्ष पार कर चुका हूँ और अब ई-कविता समूह पर कवितायें लिखने में ही समय बीतता है. उक्त चित्र देख कर लगभग तीन वर्ष पहले लिखी अपनी एक कविता याद आ गई.

सत्यनारायण शर्मा 'कमल', कानपुर

मुझे गर्भनाल की प्रति (hard copy) पिछले ४-५ महीने से निरंतर प्राप्त हो रही है. बहुत ही सुन्दर कहानियाँ और कविताएँ पढ़ने को मिल रही हैं. किन्तु मुझसे अभी तक उसका शुल्क नहीं लिया गया है. मैं चाहता हूँ कि जो भी निर्धारित शुल्क है उसे मैं अदा करूँ. इस सम्बन्ध में आपका मार्गदर्शन चाहिए कि किस तरह मैं उसे अदा कर सकता हूँ.

प्रताप सिंह, नोएडा

गर्भनाल एक उच्चकोटि की पत्रिका है जो साहित्यिक अभिरुचियों को तृप्त करती है. प्रताप नारायण जी की कहानी बहुत अच्छी लगी थी. उस पर हमने प्रतिक्रिया भी लिख कर भेजी थी प्रताप जी को. ऐसे ही इस पत्रिका को सँवारे रखिए और हम साहित्य प्रेमियों तक पहुंचाते रहिए. अशेष शुभकामनाओं और प्रार्थनाओं के साथ.

दीप्ति

गर्भनाल के ६१वें अंक को एक नए रूप में देख कर अच्छा लगा. इस ई-पत्रिका के छठवें वर्ष में पदार्पण पर बधाई. प्रभु जोशी ने राष्ट्रभाषा और उसके प्रति हमारे देश के नेताओं के विचारों का पर्दाफाश किया है. अब तो हमारे गृहमंत्री अहिंदी भाषी हैं और उस क्षेत्र से आते हैं जहां हिंदी के विरोध में एक ज़बरदस्त मुहिम चली थी और वह विरोध आज भी बरकरार है. आश्चर्य तो तब होता है जब स्वदेशी विचारों की सरकार के लौहपुरुष गृहमंत्री भी इस ओर उदासीन ही रहे. अब राजनीति में वोट बैंक के चलते न केवल इस सरकार से बल्कि आने वाली सरकारों से भी किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं ही की जा सकती क्योंकि जो आसार दीख रहे हैं, लगता है कि विदेशी फिर देश की जनता पर राज करेंगे... आज भी परोक्ष रूप से ही सही, वही तो राज कर रहे हैं! गर्भनाल के सफल प्रकाशन के पांच वर्ष पूर्ण करने पर पुनःबधाई..

चंद्र मौलेश्वर
cmpershad.blogspot.com

आपकी भेजी पत्रिका गर्भनाल पढ़ रही हूँ. अभी पहला लेख पढ़ा है प्रभु जोशी का 'सरलता के सहारे हत्या की हिमकत'. एक बात कहूँ कितना ही वो नियम बना लें हम अगर श्रद्धा से हिन्दी को अपनाते हैं तो हमारी श्रद्धा खत्म नहीं होती. जब हम कहीं जाते हैं तो सोचते हैं वो जगह बहुत रंगीन होगी- भारत आकर भी लोगों को अच्छे और बुरे दोनों अनुभव होते हैं. दागमार मारकोवा - मेरी पहली भारत यात्रा - पूर्व कल्पना और वास्तविकता के अन्तर्गत - उस देश की पहली यात्रा जहाँ जीवन बसता है. सही भी है इस देश की अपनी आत्मीयता है. अच्छा वर्णन किया है उन्होंने अपनी भावनाओं का. मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है कि विदेश में रहकर भी भावनाओं को उन्होंने हिन्दी में लिखा है.

बबीता वाधवानी, जयपुर

'गर्भनाल' के दो अंक नवम्बर व दिसम्बर २०११ प्राप्त हुए. इन अंकों में कविता, दोहे, कहानी, व्यंग्य, आलेख, हाइकु आदि काफी कुछ पढ़ने के लिए था. नवम्बर अंक में संस्मरण के तहत दीपमाला का लेख 'यहाँ सब कुछ उल्टा क्यों होता है' पढ़ा. पढ़कर आनंद आया, जानकारी में इजाफा हुआ. मैं इस लेख को नवम्बर अंक की बेहतरीन रचना मानता हूं. दीपमाला को मेरी ओर से मुबारकबाद दीजिएगा. इसी अंक में संस्मरण के तलत मीनाक्षी धन्वन्तरि का लेख 'सपनीले सफर की यादें' दिया गया है. अच्छी रचना है. मेरा ख्याल है कि इस रचना को संस्मरण नहीं कह सकते, हां यात्रा संस्मरण या यात्रा वृत्तांत कहा जाए तो ज्यादा उपयुक्त रहेगा. इसी अंक में कुसुम सिन्हा का संस्मरण 'विदेशों में हिंदी' पढ़ने को मिला. लेख में किसी राजीव का उदाहरण पेश किया गया है जो हिंदी सीखने में रुचि रखता है और सीख भी रहा है. लेकिन भारत में तो किसी की भी रुचि हिंदी में नहीं है. यह यथार्थ है कि हमारे यहां एक भी राजीव नहीं जो हिंदी सीखने या बोलने में रुचि व्यक्त करे. हां, अंग्रेजी में रुचि रखने व सीखने वाले बहुत से राजीव यहां मौजूद हैं. मेरा मानना है कि हमें इस बात से कतई भी खुश नहीं होना चाहिए कि विदेशों में हिंदी बढ़ रही है, बल्कि हमें तो इस बात से दुखी होना चाहिए कि भारत में हिंदी धीरे-धीरे कम हो रही है और अंग्रेजी का चलन बढ़ रहा है. दरअसल मैं पंजाबी, हिन्दी और अंग्रेजी की तीन मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित कर रहा हूं. मैं अपने अनुभव के बल पर कह सकता हूं कि हिन्दी में कद्रदानों की कमी है. सब अंग्रेजी की तरफ दौड़ रहे हैं. पंजाबी/हिंदी पढ़ने वाले ठंडे पड़ते जा रहे हैं - यह सच्चाई है और इस सच्चाई को मानने के लिए कई बार हम तैयार ही नहीं होते. (कई बार मान भी लेते हैं) हम अपनी आँखों को बंद कर लेते हैं और इस यथार्थ को अनदेखा कर देते हैं. इस संबंधी चिंतन के साथ-साथ बड़े-बड़े कार्यों को अंजाम देने की भी ज़रूरत है. मेरा मानना है कि अंग्रेजी के साथ जुड़ना बुरा नहीं, लेकिन हिंदी को छोड़ देना बुरा है. गर्भनाल के दोनों अंकों के बारे में यही कह सकता हूं कि इनके जरिये जहां एक ओर साहित्यिक विभूतियों की रचनाएँ पढ़ने का अवसर मिला, वहीं दूसरी ओर कुछ प्रतिभा सम्पन्न रचनाकारों को भी पढ़ने में आनंद आया. कुल मिलाकर प्रकाशित सामग्री पठनीय एवं उपयोगी है. अंक के सफल संपादन के लिए आपको और आपके सहयोगियों को हार्दिक बधाई.

अमित कुमार लाडी
मुख्य सम्पादक, आलराऊंड मासिक, फरीदकोट

The picture selection and presentation of magazine impressed me this time and hope you will continue with the good work. Wising you all the success.

Vipul Sharma
Spl. Correspondent Legacy India

Thanks. You have started a good magzine and a novel work to propogate HINDI in whole world, our prabashi bhartiya will enjoy it very much, the poems, articles and literature content is of high standard, my all best wishes for such an excellant presentation

Dr. D.R. Nakipuria, Noida

Thank you for making the e-copies of Garbhanal volubly to us. These magazines are very informative and useful to know about our country and related aspects. with regards

Dr. Oum Prakash Sharma, New Delhi

पत्रिका गर्भनाल

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

गर्भनाल के पुराने सभी अंक उपलब्ध हैं :
http://www.garbhanal.com

आपको हिंदी बोलनी आती है? तो फिर हिंदी में ही बात करिये. आप कुछ लिखना चाहते हैं? तो फिर हिंदी में लिखिये.

अपनी बोली-बानी में बात करने का मंच है गर्भनाल पत्रिका, जो हर माह नियमित तौर पर आपके ईमेल बॉक्स में पहुँच जाती है. इसे पढ़ें और परिजनों, मित्रों को फॉरवर्ड करें.

पत्रिका की मुद्रित प्रति प्राप्त करने के लिए

आज ही सदस्य बनें

सदस्यता शुल्क	एक वर्ष के लिए
भारत के अंदर	**रुपये 950** रजिस्टर्ड डाक से **रुपये 550** कूरियर से
दूसरे देशों में	**रुपये 1800/40 डॉलर** (एयर मेल)

साधारण डाक से भेजने की सुविधा नहीं है।

- डी.डी./एम.ओ./चैक 'GARBHANAAL PATRIKA' के नाम से भोपाल में देय हों, जिन्हें 'GARBHANAAL PATRIKA, DXE-23, Minal Residency, J.K. Road, Bhopal-462023 M.P. India' के पते पर भेजा जाना चाहिये।
- चैक द्वारा भुगतान करने पर, भोपाल से बाहर के चैकों पर कृपया सदस्यता शुल्क में 50 रु. का निकासी शुल्क (क्लियरेंस चार्ज) जोड़ कर भेजें।
- चैक द्वारा भुगतान की स्थिति में, 4-6 सप्ताह प्रक्रिया हेतु दें।
- आने वाले अंक की प्राप्ति के लिए कृपया यह निश्चित कर लें कि आपका भुगतान पिछले महीने के प्रथम सप्ताह तक हमारे पास पहुंच जाए।
- कृपया अपना नाम और पता स्पष्ट अक्षरों में जिप/पिन कोड, फोन नं. और ई-मेल आई.डी. के साथ भरें।
- किसी भी डाक की विलंब, परिवहन क्षति या सदस्यता फार्म की किसी गलती के लिए जिम्मेवार नहीं होगा।
- **ऑनलाइन सदस्यता शुल्क जमा करने की जानकारी** : **GARBHANAAL PATRIKA**, BANK ACCOUNT NO. : **114211023956**, BANK : **DENA BANK**, M.P. NAGAR, BHOPAL (M.P.), IFSC CODE : **BKDNO811142**
- अधिक जानकारी अथवा सहायता के लिए संपर्क करें : garbhanal@ymail.com

यह फार्म भर कर डी.डी., चैक या एम.ओ. के साथ भिजवाएँ

हाँ, मैं चाहता हूँ ☐ नई सदस्यता

☐ 1 वर्ष (कूरियर से) ☐ 1 वर्ष (रजिस्टर्ड डाक से)

_____ रुपये के लिए GARBHANAAL PATRIKA के नाम से डी.डी./एम.ओ./चैक नंबर _____ दिनांक _____

बैंक _____ संलग्न है.

नाम : _____ उम्र : _____ व्यवसाय : _____

पता : _____

शहर : _____ राज्य : _____ पिन कोड : ☐☐☐☐☐☐ देश : _____

ईमेल : _____ टेलीफोन : _____ मोबाइल : _____